श्रीयुत लाला हरदयाल जी

के

स्वाधीन विचार

अनुवादक, संग्रहकर्ता, व प्रकाशक

नारायण प्रसाद अरोड़ा बी. ए.

पटकापुर, कानपुर

पं० गङ्गानारायण शुक्ल के प्रबंध से रघुनन्दन प्रेस
कानपुर में मुद्रित

दूसरी बार १००० | सम्वत् १९७६ | मूल्य १) रु०

प्रकाशक की प्रस्तावना।

इस पुस्तक में लाला हरदयाल जी के अंगरेज़ी लेखों का अनुवाद है। पहिला लेख स्वयं उनका लिखा हुआ है और बाक़ी सब अनुवादित हैं। इनमें से लगभग सब ही हिन्दी पत्रों और पत्रिकाओं में निकल चुके हैं।

मैं सरस्वती, मर्यादा, अभ्युदय, सद्धर्म्म प्रचारक, गृह लक्ष्मी, प्रताप, संसार और स्वदेश बान्धव के सम्पादकों का बहुतही कृतज्ञ हूं जिन्होंने उपरोक्त पत्रिकाओं और पत्रों में निकले हुए इन लेखों के छापने की आज्ञा दे दी है। अन्त में मैं अपने मित्र श्रीयुत गणेश शंकर जी विद्यार्थी का बहुत अनुग्रहीत हूं जिन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की है। पहिले संस्करण में केवल ६ लेख थे और पृष्ठ संख्या ६६ थी। किन्तु इसबार लेखों की संख्या १५ और पृष्ठों की २०४ कर दी गई है। लगभग इतनाही बड़ा दूसरा भाग भी तैयार हो रहा है।

बिनीत—

नारायण प्रसाद अरोड़ा

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
भूमिका	क— घ
१ पञ्जाब में हिन्दी के प्रचार की ज़रूरत ...	१—९
२ भाषा और जाति का सम्बन्ध	६—१२
३ धर्म प्रचार	१३—१६
४ अमेरिका में भारतवर्ष	१६—४६
५ यूरोप की नारी	४६—५६
६ राष्ट्र की सम्पत्ति	५६—८१
७ कुछ भारतीय आन्दोलनों पर विचार ...	८१—६८
८ भारतवर्ष और संसार के आन्दोलन ...	६६—१०४
६ महापुरुष	१०४—१०८
१० भारतीय किसान	१०६—१२२
११ आशावाद	१२२—१३३
१२ अप्रत्यक्ष आकरण और साधारण जीवन ...	१३३—१४५
१३ महात्मा कार्ल मार्क्स	१४५—१७०
१४ हिन्दुओं का सामाजिक पतन	१७०—१९६
१५ पाश्चात्य देशों की शिक्षा पर एक सम्मति ...	१६७—२०३

भूमिका

श्रीयुत लाला हरदयाल एम० ए० के नाम से देश का शिक्षित समुदाय अपरिचित नहीं। उनकी लेखनी में जादू है। उनके एक एक शब्द में ऐसी विलक्षण शक्ति है कि कट्टर से भी कट्टर आदमी एक बार उनके शब्दों की बाढ़ के सामने नहीं ठहर सकता। उनकी भाषा में वह ग़जब का ओज है कि वे हृदय तक फड़क उठते हैं जिनपर उदासीनता की घटा छागई हो और जो संसार के लिये मृत-प्रायः हो चुके हों। उनकी भाषा में प्रवाह भी इतना ज़बरदस्त है कि शब्द पर शब्द-और एक से एक सुन्दर—निकले पड़ते से मालूम होते हैं उनके शब्दों में मौलिकता कूट कूट कर भरी रहती है। उनके भावों से प्रतिभा फूटी पड़ती है। उनकी इन शक्तियों का लोहा बड़े बड़े आदमी मान चुके हैं। उनके विरोधियों तक ने स्वीकार कर लिया है कि वे एक प्रकृत पुरुष हैं।

उनके लेख अधिकतर अंगरेज़ी भाषा में निकलते रहे हैं। वे लिखते तो बहुत दिनों से हैं। उर्दू में भी उन्होंने कुछ लिखा और फ्रांस के पत्रों के लिए फ्रेंच में भी। परन्तु सन् १६०८ में उनके जो लेख निकले थे उन्हों ने और उनके अनुवादों ने देश में एक तहलका मचा दिया था। लोग चौंक से पड़े थे।

इन पंक्तियों का लेखक हरदयाल जी की योग्यता और प्रतिभा का क़ायल है। हमारे देश में उन आदमियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है

जो उनके समान पाण्डित्य में बढ़े चढ़े हैं। वे राजनीति और दर्शन शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। संसार का इतिहास उनकी उङ्गलियों पर है। फ्रेंच, संस्कृत और फ़ारसी के वे पण्डित हैं। यदि उनमें असाधारण योग्यता न होती तो हमें संयुक्त-राज्य अमेरिका के एक बड़े भारी विश्वविद्यालय में हिन्दू दर्शन-शास्त्र के अध्यापक के आसन पर किसी हिन्दुस्तानी को बैठे हुए देखने का गर्व प्राप्त न होता।

उनके विचारों में बड़ा ही परिवर्तन हुआ है। एक समय था कि दुनियां उन्हें 'संस्कृत मयी' देख पड़ती थी। शास्त्र और पुराणों ही में उन्हें संसार की सारी फिलासफी भरी देख पड़ती थी। प्राचीन संस्थायें उनके हृदय में देश के भावी जीवन के सुन्दर चित्र खींचने लगीं। लेकिन रंग पलटा। हरदयाल जी ने देश को छोड़ा और उनके पुराने ख़याल़ातों ने भी उनका साथ छोड़ा। आज वे अपने देश वासियों के पास सन्देश भेजते हैं कि पुराने कपड़े आग में डाल दो नये धारण कर लो। वर्तमान समय की काशीपुरी, रामेश्वर और मक्का, जेनिवा, पेरिस, वर्लिन और न्यूयार्क को समझो। हरदयालजी के इन विचार-परिवर्तनों को मैं अनुचित नहीं समझता संसार की उन्नति का रहस्य ही परिवर्तन है। हमें आगे बढ़ना ही पड़ेगा, या मर जाना होगा। आगे बढ़ने के लिए हम पीछे मुंह किये हुए नहीं चल सकते। हमारा भूत-काल कितना ही अच्छा क्यों न हो लेकिन उसके मीठे राग गाने ही से हमारा काम नहीं चल सकता। प्राचीन सभ्यता का गर्व हमारे लिए आगे बढ़ने में सोने की ज़ंजीर सिद्ध न होना चाहिये।

हरदयाल जी में और भी कितने ही बड़े मार्के के गुण हैं। वे पक्के देशभक्त हैं। उनकी देशभक्ति साधारण ढङ्ग की भी नहीं। वह सच्चे प्रेम के दर्जे तक पहुंच चुकी है। कृत्रिमता उनके पास फटकने नहीं पाती। उनका एक एक अक्षर कहे देता है कि जो कुछ वे लिखते हैं वह उनके हृदय का उद्गार होता है। वे समता के सिद्धान्त के सच्चे अनुयायी हैं। उनके रहन-सहन की सादगी, उनके सद् व्यव-हार और उनके शब्दों और कामों से समता का भाव टपकापड़ता है।

योग्य और प्रतिभाशाली होते हुए यदि वे सच्चे समतावादी न होते, यदि उनका हृदय महान् न होता, तो देश को उद्धार और अधिकार का सन्देश सुनाते २ वे अपने भक्तों पर ऐसा मंत्र चलाते कि वे उनकी व्यक्ति-गत उपासना में लग जाते और मानसिक गुलामी के गढ़हे में गिर पड़ते। लेकिन यह उनके हृदय की असाधारण उदारता है कि उन्हें नाम की ज़रा भी पर्वाह नहीं। यदि हरदयाल जी में इसके सिवा और कोई गुण न भी होता, तो यही इतना काफ़ी था कि उनके मित्र और शत्रु दोनों के हृदय पर उनकी महत्ता का सिक्का जम जाता।

एक बात उनमें और भी बड़ी भारी है। केवल स्वदेश-प्रेम के लिए उन्हें जो २ नुक़सान सहने पड़े तथा जो जो विपत्तियां झेलनी पड़ी हैं, देश में बहुत ही कम आदमी निकलेंगे, जिन्हें वैसे ही कष्ट और वैसी ही आपत्तियों का सामना करना पड़ा हो। लेकिन वे उस तपे

हुए सोने के टुकड़े की तरह हैं जो जितना ही अधिक आग में डाला जाता है उतनाही चमकदार बनता जाता है।

अब आप उन्हीं के लेखों को पढ़ें और ज़रा ध्यान से विचार करें।

गणेश शङ्कर विद्यार्थी

—:o:—

स्वाधीन विचार

पंजाब में हिन्दी के प्रचार की जरूरत ।

पंजाब में हिन्दी के प्रचार की बड़ी ज़रूरत है । भारतवर्ष का यह भाग प्राचीन समय में वेद-विद्या का अधिष्ठान था। धर्म्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र इसी भूमि में है। मंत्र द्रष्टा ऋषि इसी की नदियों के तट पर समाधि लगाये ध्यान में मग्न रहते थे । यहीं हिन्दू-जाति ने पहले पहल भारत को देखा और उससे सम्बन्ध बांधा। पंजाब भारतवर्ष की ढाल है जिसने यवनों की अनेकचोटों से इस देश की रक्षा की। पंजाब ही में बली होकर हिन्दुओं ने सारे मुल्क पर अपना अधिकार जमाया । यह वही प्रान्त है जहां के शूर वीरों ने पुराने ज़माने में, और सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में, हिन्दू जाति के मलिन मुख को विजयामृत के सेचन से बिमल करके उस पर राज्याभिषेक का टीका लगाया।

हाय! इसी पंजाब की दशा इस समय शोचनीय हो रही है। विदेशियों के सम्पर्क से बहुत बातों में इसका हिंदुत्व शिथिल हो गया है। बंगाल और महाराष्ट्र की अपेक्षा पंजाब का हिन्दुत्व ऐसा ही है जैसे सच्ची लैस के आगे झूठी लैस;

या खिले हुए कमल के सामने मुरझाई हुई पंखड़ियों का ढेर। जिधर देखो हिंदू जाति की हीनता का सबूत मिलता है। सब तरफ़ घर में, बाजार में, साहित्य में, बोलचाल में, रूप रंग में, आचार-विचार में, हम हिंदू जाति की असलियत को मिटा हुआ देखते हैं। हम पर विदेशी रोग़न चढ़ा हुआ है। हम अपने आपको भूल गये हैं। महात्मा मनु के अनुसार जैसे काठ का हाथी अथवा चमड़े का मृग केवल नाम ही के होते हैं, उसी तरह पंजाब के हिन्दू अपनी भाषा के लिहाज़ से नाम मात्र के हिन्दू हैं। वे भारतवर्ष में रहते हुए भी विदेशी कहलाने योग्यहैं। मैं इस अवसर पर और बातोंका जिक्र न करूंगा मैं केवल भाषा के विषय में यह कहना चाहता हूं कि अब समय आ गया है कि हम श्रीगणेश की प्रशंसा तुरकों के अक्षरों में न करें और अपनी पिछली गिरी हुई अवस्था के कलंक को सदैव तिलक समझ कर अपने माथे पर खुशी से न लगावें। जो मलीनता हमारे शरीर पर आपत्काल में आ गई थीं उसको हिन्दुत्व के पवित्र सरोवर में नहा कर धो डालें। जैसे शराबी नशे में तरह तरह की लज्जाजनक बातें करता है, पर नशा उतर जाने पर उनसे शरमाता है, उसी तरह कमज़ोरी और आत्मविस्मृति के समय में जो अनुचित बातें हमने की थीं उनसे अब लज्जा आनी चाहिये। क्या ज़रूरत है कि दास आज़ाद होकर भी कान में गुलामी का छल्ला पहने रहे, या पहलवान, ज़मीन पर चित होजाने पर कभी, पीठकी मिट्टी साफ़

न करे। हिन्दू जात को धिक् है, जो दैवदुर्विपाक से प्राप्त हुई लज्जाजनक बातों को मौक़ा पाकर भी न छोड़े।

पंजाब अपनी भाषा को बहुत समय से भूल गया है। हिन्दुत्व के ज्ञान का दीपक उसे किसी ने नहीं दिखाया। पर-जातियों की आंखों के जादू ने इसे अन्धा बना दिया। विजित होने से इस पर आत्मविस्मृति का ऐसा नशा चढ़ा कि यह बहक सा गया, अपने आपको कुछ का कुछ बतलाने लगा, बहु-रूपियों का सा खेल खेलने लगा। जैसे मालिक के उतरे हुए कपड़े पहन कर नौकर मटकते फिरते हैं, उसी तरह मुसलमान क़ौम के फटे पुराने साहित्य के चीथड़े चुनकर हिन्दुओं ने भी अपनी भाषा को अलंकृत (!) करना आरम्भ किया। यह नहीं समझा कि दुनिया हमें क्या कहेगी। तुलसी और सूर के काव्य न पढ़ कर सौदा और मीर की तुच्छ ग़ज़लों पर ऐसे गिरे जैसे बच्चा मां का पथ्य दूध छोड़ कर मिट्टी खाने दौड़ता है। फ़ारसी साहित्य की हम नक़ल उतारने लगे और अपनी पुरानी करी कराई सब भूल गये। उर्दू के गद्य पद्य में फ़ारसी शाइरों से मांग मांग कर विदेशी अलंकार भरने लगे। नाटक का नाम तक बाक़ी न रहा। क़सीदों, मसनवियों, ग़ज़लों ने दोहों, चौपाइयों की जगह ली। हिन्दुओं की सारी लियाक़त, झूठे सिक्कों की तरह, उर्दू के रद्दी सिक्के हिन्द की टकसाल से निकालने में चली गई और कुछ फल न मिला। झूठा सिक्का जो बनाया, साहित्य के परखने वाले साहूकारों ने उसे परे फेंक

दिया। विदेशी चीजें कूट कूट कर अपने साहित्य में भरीं। नतीजा यह हुआ कि अपनी रीति तो याद न रही, मुफ्त में नक़लची और खुशामदी कहाये। न क़ाआनी ही बन सके न तुलसी न फ़ारसी ही लिखी न हिन्दी। एक मिश्रित भाषा जिसमें दोनों का मेल था, निकाली। मगर जैसे मनुष्यों में दोग़ले से सब नफ़रत करते हैं इसी तरह इस नये भूत से जिसका धड़ हिन्दी का, और कपड़े और आवाज़ फ़ारसी के थे, सब समझ-दार आदमियों ने नफ़रत की। नमक और बूरा मिलाने से सिर्फ उलटी ही होसकती है। मछली पानी के बाहर मर जाती है। अंगूर सर्दी में नहीं उगता। हर क़ौम अपने मुआफ़िक़ साहित्य की आबो हवा में ही तरक्क़ी करसकती है। जब साहित्य हमारे मुल्क और क़ौम के अनुरूप न रहा तब वह हमारा न रहा। वह हमारी जाति का अंश नहीं। वह हमारे आदरका पात्र नहीं। वह हमारी दुर्गतिकी निशानी हैं और हमारी जातीय उन्नतिके रोकने के लिये बलवान विघ्न है। वह गृह-सर्प है कि दग़ा करता है। वह वेश्या है जो झूठे आभूषण पहनकर हमें अपनी कुल स्त्रियों से अलग कराती है। विदेशी रस से भरे हुए साहित्य को जो हिन्दू अपना समझते हैं वे हलाहल को अमृत मानते हैं। इससे बढ़कर हमारी अधोगति का और क्या चिन्ह हो सकताहै कि आज हिन्दी भाषा, जब हिन्दुओं के आगे आकर अपनी पैत्रिक पदवी मांगती है, तब हिन्दू हिन्दी शकुन्तला के दुष्यन्त बनकर कहते हैं, हम तुझे नहीं जानते, हमने कभी तुझे नहीं देखा।

पंजाब में रोज़ की बोलचाल और लिखने पढ़ने में फ़ारसी मिश्रित उर्दू ही का दौर दौरा है। यहां हिन्दू लड़के फ़ारसी पढ़ते हैं। मद्रसे में मौलवी साहब की जमाअत ऐसी भरी होती है जैसे थियेटर की रङ्गभूमि। पर बेचारे संस्कृत के अध्यापक का कमरा खंडहर की तरह सूना रहता है। यदि कोई भूले भटके वहां जाते हैं तो सिर्फ़ दो चार। शोक है कि जिन लड़कों की क़ौम में बाल्मीकि और तुलसी हुऐ वे गुलिस्तां बोस्तां के पढ़ने में इतना परिश्रम करें, और हितोपदेश का नाम भी न सुनें! किस कैदी को अपनी बेड़ियों से प्रेम हो सकता है? किस मनस्वी को अपनी मातृभाषा से घृणा हो सकती है? पर भारतवर्ष में सब बातें उलटी हैं। पंजाब के हिन्दुओं के नाम तक अनोखे होते हैं। "बलन्द-इक़बाल" हिन्दू कुल में उत्पन्न होते हैं। और "तेग़बहादुर" तो हमारे माननीय गुरुजी ही का नाम था। पत्र में "जनाब क़िबलेगाह साहब" से आरम्भ किया जाता है। गोया यमुना के तट पर अरब की गरम आंधी का झोंका आ गया। विवाह के बुलावे कई ज़ातों में फ़ारसी में भेजे जाते हैं—गोया निकाह पढ़वाना है। कई हिन्दू सज्जनों के यहां मुसल्मान उस्ताद फ़ारसी पढ़ाने के लिए रक्खे जाते हैं और पण्डित जी महाराज! उनको सिर्फ़ गुरु-पूजा ही पर कुछ दक्षिणा मिल जाती है। जवान लड़के ग़ज़ल लिखते हैं और कमल को भूल कर गुल पर मरते हैं। भीम की जगह रुस्तम की प्रशंसा होती है और काबा, मसीहा, वगैरह विदेशी शब्दों से

गद्य पद्य अलंकृत होता है । कहावतें भी कितनी ही ऐसी हैं कि सुन कर हंसी आती है और रोना भी । "ढाई ईंट की अलग मसजिद बनाना" "न खुदा ही मिला न बिसाले सनम" वगैरा फ़िक़रे सब की ज़बान पर हैं । यदि रामचन्द्र आज फिर दिल्ली में आवें तो हिन्दुओं को न पहचान सकें । वे आश्चर्य्य करें कि मैं भारतवर्ष में हूं या कहीं और । उर्दू का हर घर में रिवाज है । लड़कियां भी हिन्दी पढ़ कर फिर उर्दू सीखना बहुत बड़ा काम समझती हैं । जैसे मोटी चीज़ खाकर खट्टी को जी चाहता है वैसे ही इनका हाल है । घर के हिसाब तक में घी, रौग़न ज़र्द लिखा जाता है । और चिट्ठियों के ऊपर पते में "बख़िद्मत......बिरसद" आदि शब्द सारी दुनियां में हमारे अज्ञान की डौंडी पीटते हैं । राम राम और नमस्कार की जगह "बन्दगी" सुनकर कान बन्द करने को जी चाहता है ।

स्त्रियों ने अपना जाति-धर्म हाथ से जाने नहीं दिया है । स्त्रियां सदा अपनी जाति के प्राणों की रक्षा करती हैं । क्यों न हो, प्राण देती भी तो वही हैं । हिन्दू स्त्रियां हिन्दी पढ़ना अपना मुख्योद्देश्य समझती हैं । उनके लिये अच्छी अच्छी पुस्तकें हिन्दी में लिखी जानी चाहिए जिसमें उनको उर्दू पढ़ने की ज़रूरत न रहे । भाइयो, इस त्रुटी को पूरा करो । स्त्रियों ही से हिन्दी के प्रेम की वृद्धि करो । कई समाजें पंजाब में ऐसी हैं जो हिन्दी प्रचार का कुछ काम कर रही हैं । आर्य्य-समाज इनमें मुख्य है । देव समाज के अनुयायी भी हिन्दी में

ही व्याख्यान देते हैं। राधास्वामी वाले भी अपने मत के ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखते हैं। इन सब समाजों और संप्रदायों से हिन्दी की कुछ कुछ उन्नति हो रही है। आर्य्य-समाज ने फ़ारसी अक्षरों में बहुत से हिन्दी के शब्दों को स्थान दिया। इससे जो हिन्दू हिन्दी नहीं जानते उन तक हिन्दुत्व की कुछ सुगन्ध पहुंच सकती है। इस हिन्दी मिश्रित उर्दू को ग़ालिब और ज़ौक़ के कलाम के चाहने वाले निरादर की निगाह से देखते हैं। परंतु यह उनकी भूल है।

आजकल युवक विद्यार्थी दूर दूर कालिजों में पढ़ने जाते हैं। परन्तु अपनी स्त्रियों को घर पर छोड़ जाते हैं। उन्हें पत्र लिखना पड़ता है। हमारी स्त्रियां प्रायः हिन्दी ही जानती हैं। उन्होंने तो नौकरी के लिये अपना जाति धर्म बेचा नहीं। वे अब तक अपनी जाति-भाषा को रत्न की तरह छिपाये अंतःपुर में बैठी हैं कि कब पुरुषों की बुद्धि ठिकाने आवे और कब उनको वह अनमोल मोती फिर प्राप्त हो। क्यों न हो, वैसे भी तो घरकी सम्पत्ति सोने चांदी के रूप में स्त्रियों ही के शरीर पर रहती है! इस कारण नवयुवक बाबू साहबों को हिन्दी पढ़नी पड़ती है जो काम वे गुरु के कहने से न करते थे वह स्मरशासन करवा लेता है। सच है सब तो त्रिलोचन नहीं हैं जो फूल के धनुष वाले को भस्म कर दें। अतएव जितने विद्यार्थी दूर देश में जायंगे उतनाही हिन्दी का प्रचार अधिक होगा।

इस प्रकार हिन्दी धीरे धीरे फैल रही है। पर इस जलवासे

की चाल से विशेष लाभ न होगा। जब तक कचहरियों और दफ़तरों में उर्दू अधिकार के सिंहासन पर बैठी है और हिन्दू लोग संस्कृत पढ़ना अपना धर्म नहीं समझते, तब तक हिन्दी की यथार्थ उन्नति न होगी। एक और बात भी विचार योग्य है। बहुत से आदमी मुंह से तो हिन्दी के प्रेमी बनते हैं, पर कोई किताब या लेख लिखने के समय उससे मुंह छिपाते हैं। यह दोष हिन्दी के बड़े बड़े भक्तों तक में पाया जाता है। जब हिन्दी के पक्षपाती ही ऐसा करेंगे तब औरों से क्या आशा की जाय? ज़बानी बातों से कहीं काम चलता है! पंजाब में है उर्दू का प्रचार। इससे उर्दू ही की पुस्तकों के ग्राहक अधिक हैं। जब लेखक साहित्य के मैदान में आते हैं तब देश प्रेम तो हिन्दी की ओर घसीटता है और द्रव्य-प्रेम उर्दू की ओर। इस दुविधा में महामाया लक्ष्मी ही की जात होती है। फिर यह भी विचार होता है कि अपने सिद्धांत उर्दू में अधिक लोगों के पास पहुचेंगे। इससे वे अपनी विचार-सुगन्धि को तांबे के पात्र में रखते हैं, क्योंकि सोने का पात्र लोगों को पसंद नहीं। इससे बेचारी हिन्दी के गले में छुरी फिरती है। लाला लाजपत राय जी ने उर्दू में कई महापुरुषों के जीवन चरित लिखे हैं। और आर्य्य-समाज-कालिज के एक महाशय ने आनन्दमठ का बंगाली से उर्दू में अनुवाद किया है। यदि इसी तरह हमारे हाथ और क़लम उर्दू की सेवा में तत्पर रहे तो पंजाब में हिन्दी का प्रचार होना दुःसाध्य होगा। हम को

दूरदर्शी होना चाहिये। और हर प्रयत्न से, सब विघ्न-बाधाओं को उल्लंघन करके हिन्दी लिखना-पढ़ना सीखना चाहिए, हिन्दी बोलना चाहिए और हिन्दी ही में पुस्तक रचना करना चाहिए। ऐसा न करना अपनी जाति को दुर्बल करना है, अपने हाथ से अपनी जड़ें खोदना है, हिन्दुत्व पर धब्बा लगाना है।

(सरस्वती)

भाषा और जाति का सम्बँध।

एक विद्वान् का कथन है कि भाषा बिना कोई जाति जीवित नहीं रह सकती। भाषा ही किसी भी जाति की एकता का एक मात्र आधार है और भाषा ही जाति के पुरुषों में परस्पर प्रेम और व्यवहार का सम्बन्ध स्थापित करती है। भाषा ही के द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अपने भाव प्रगट कर सकता है। बात तो यह है कि बिना भाषा के भाषण किये क्या कोई मनुष्य आनन्द से जीवित रह सकता है? नहीं। अपने जन्मस्थान को, जिस के जल वायु को सेवन कर हम पलते हैं, हम अपनी मातृभूमि कह कर प्यार करते हैं उसी प्रकार हमें अपनी भाषा को भी, जो कि हमारे ज़ातीय जीवन का एक स्तम्भ है, मातृभाषा कह कर गद्गद् होना चाहिये।

हिन्दू सदैव से उन चीज़ों को बड़ा समझते आये हैं

जिनसे मानव जाति का किसी न किसी अंश में उपकार होता आया है। गौ, गंगा और भारत भूमि को वे माता के नाम से पुकारते हैं। फिर हम अपने सब सुखों की जननी अपनी हिन्दी भाषा को मातृभाषा कह कर क्यों न पुकारे ? यदि किसी शक्ति के द्वारा हम से अपनी भाषा छिन जावे तो हमारी कैसी दुर्दशा होगी इस बात के बिचारने से ही दुःख होता है क्योंकि प्रत्येक जाति की धर्म्म सम्बन्धी बातें, नीति, विज्ञान उसकी भाषा ही में रहते हैं। भाषा बिना हम जीवित नहीं कहला सकते। संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा में जो रत्न भरे पड़े हैं उनको हम बिना भाषाओं के जाने कैसे जान सकते हैं ? जो जाति अपने पुरुषाओं के चरित्र और अपने भूतकाल को नहीं जानती वह जड़से उखड़े हुए वृक्षके समान है। जब पिता पुत्र को अपनी भाषा पढ़ाता लिखता है तब ही वह पितृऋण से मुक्त होता है। भाषा के द्वारा हम अपने पूर्व पवित्रात्मा पुरुषों का जीवन देख सकते हैं और उनके सदृश ही अपने जीवन को ढाल सकते हैं। सच तो यह है कि अपनी मातृभाषा के साहित्य भाण्डार को बढ़ाना पूर्व पुरुषों को उतना ही शान्ति और सुखकारक है जैसा कि उन का श्राद्ध करना बताया जाता है।

उपर्युक्त कारणों से ही जो जाति जीवित है वह अपनी भाषा के लिये झगड़ती है और मातृभाषा को जीवित रखने का पूर्ण उद्योग करती है। गिरी पड़ी जातियां भी इस उन्नित के सूत्र

को समझती हैं और मातृभाषा के लिये कुछ न कुछ उद्योग करती रहती हैं। वे "धर्म्म" के समान अपनी भाषा की भी रक्षा करती हैं। संसार के इतिहास में ऐसी ज़ातियों के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। बूर गवांर किसानों ने अपनी स्वाधीनता और सर्वस्व खो दिया है परन्तु अपनी मातृभाषा के बोलने का स्वत्व नहीं छोड़ा। उनकी भाषा ही वहां के दफ्तरों में लिखी पढ़ी जाती है।

अंगरेज़ों का यह अभिमान के साथ कथन है कि उनके युवा केवल एक ही भाषा को अच्छी तरह बोल सकते हैं और वह भाषा उनकी मातृभाषा अंगरेज़ी ही है। यह उनका वचन स्वजात्यभिमान और देशभक्ति से कैसा परिपूर्ण है। संसार के इतिहास में यह बात देखी गई है कि जब एक जाति दूसरी पर जय लाभ करती है तो विजेता जाति विजित जाति की भाषा की कमर तोड़ने में भी कमी नहीं करती और इसी लिये अपनी भाषा का आधिपत्य दूसरी जाति की भाषा पर जमाती है कि विजित जाति अपनी भाषाको खोकर अपनी भूतकालकी प्राप्त कीर्त्ति और यश को भूल जावे। सिकन्दर ने जिन जिन देशों पर जय लाभ किया उन उन देशों में ग्रीक भाषा का प्रचार किया। ऐसा ही रोम वालों ने भी अपनी बढ़ती के समय किया था। अंगरेज़ों ने आयरलैंड में अंगरेज़ी स्कूल कालेज खोल कर यही चाल चली थी। भारत में भी अंगरेज़ी के प्रचार ने हमारी मातृभाषा को और जातीय जीवन को बड़ी हानि पहुंचाई है।

क्योंकि भारत में जिधर देखते हैं उधर ही अंगरेज़ी भाषाजनित सभ्यता दीख पड़ती है।

भारतबासी अपनी मातृभाषा हिन्दी से बड़े पराङ्मुख हुए हैं। उन्हें किसी भले आदमी के नाम के आगे मिस्टर लगाना महत्व सूचक जंचता है। क्लब और दवाईखानों के नाम भी अंगरेजी में धरे जाते हैं। बाजारों में, किताबों में, समाचार पत्रों में, अपनी घरेलू लिखा पढ़ी में सारांश यह कि सब स्थानों में अंगरेजी का आदर किया जाता है। पंजाबी को युक्त प्रदेशवासी अपने उच्च बिचार समाचार पत्रों द्वारा सात हज़ार मील की भाषा में समझा सकता है। अपनी देश भाषा में नहीं, हाय यह कैसी बुरी बात है।

यदि नारद जी महाराज आज कल भारत में भ्रमण करते आ निकलें तो हम को अपनी सन्तान कहने में वह अकचका जायंगे। और तो और हमने अपनी मातृभाषा हिन्दी भी छोड़ दी। नारद जी हमें शायद भांड़ जाने। इसमें दोष चाहे किसी और का भी हो किन्तु बड़ा दोष हमारा है जिन्होंने अपनी मातृभाषा का पूजन त्याग दिया है। सरलता, शुद्धता, और पूर्णता में हिन्दी भाषा की बराबरी दूसरी भाषा नहीं कर सकती। मातृभाषा को भूलना कृतघ्नता है। स्मरण रक्खो जिस का भाषासाहित्य नष्ट हो जाता है वह जाति भी नष्ट हो जाती है। प्रकृति का ऐसा ही नियम है। मातृभाषा का आदर करो और अपने हृदय पर बैठाओ। [स्वदेश बान्धव]

धर्म्म प्रचार।

ईसाई मत की सफलता का मुख्य कारण उनके प्रचारकों का अदम्य उत्साह है। कितने ही उनमें विद्या-योग्यता में प्रसिद्धता प्राप्त किये हुए पुरुष होते हैं। यदि हमें ऐसे कार्य्य करने वाले प्राप्त हो जावें तो हम २० वर्ष में बहुत कुछ दुनिया को हिन्दू बना सकते हैं। मुझे बिलकुल ऐसे ही उत्साही पुरुष दीजिये मैं दुनिया को हिन्दू बना दूंगा। असत्य भी प्रचार पा सकता है यदि उनके प्रचारक असत्य के प्रचार करनेके लिये वास्तविक उद्योग करें। हिन्दू धर्म और कीर्त्ति के सच्चे प्रचारक यदि मुझे मिल जावें तो मैं यह कह सकताहूं कि यूरोप के नगरों में रामलीला का दृश्य दिखला दूंगा। मैं जानकी की मूर्त्ति वहां के चौराहों पर सुप्रतिष्ठित करा दूंगा।

मुझे वैसा उत्साह वैसी कर्य्य करने की दृढ़ता दीजिये फिर आप देखेंगे कि मिसिसिपी के तट पर हमारे ऋषियों की ऐसीही पूजा होती है जैसी कि यहां गङ्गा के तट पर होती है। हिन्दुओं को ऐसी सफलता प्राप्त होनी कुछ असम्भव नहीं है यदि उनमें दुनिया भर को हिन्दू बनाने का अदम्य उत्साह उत्पन्न हो जावे।

हिन्दुओं का अपने धर्म्म कर्म्म की बातों से कोरा रहना भी ईसाई लोगों की सफलता का एक मुख्य कारण है। गंगा स्नान से पाप दूर होने की बात को ईश्वर ही जानता है किन्तु

क्यों नहीं देशहितैषिता के प्रेम में गंगा स्नान करते। गंगा हिन्दू जाति की बड़ी नदी है इसके चारों ओर हमारा सामाजिक जीवन है। गंगा अपनी सुन्दरता में उपमा नहीं रखती। गंगा हमारे प्राचीन तपस्वियों की सहचरी है। इससे जो मनुष्य अपनी पूर्व कीर्त्ति को प्यार करते हैं उन्हें गंगा को प्यार करना चाहिये। गंगा में ही हमारे जगत् प्रसिद्ध पूर्वजों की भस्म डाली गई थी। हम उन्हीं के खून और हड्डी से उत्पन्न हैं। हम उस गंगा जल को पीते हैं जिसमें हमारे पुरुषाओं के शरीर अगणित पीढ़ियों से मिले हैं। गङ्गा हमारा अपने पूर्वजों से स्वर्ण शृंखला द्वारा सम्बंध और एकता स्थापित करती है।

भारतवासियों में देशभक्ति और आत्मसन्मान की कमी है इस कारण भी पादरियों ने सफलता प्राप्त की है। पाश्चात्य पदार्थविज्ञान के आविर्भाव के साथ साथ हिन्दू अपने जातीय धर्म्म को प्यार करने में कमी करने लगे। यहां तक कि वे अपने बच्चों को ईसाइयों के पंजों से बचाने का ज़रा भी यत्न नहीं करते। स्वार्थ ने उनके सदाचार को ग्रस लिया और विषय विलास उनके सिर पर सवार हो गया। हमारे धनाढ्यों में नशेबाज़, अपस्वार्थी, नीच प्रकृति, धोखेबाज़ और धार्म्मिक बातों में उदासीन कम नहीं हैं परन्तु अब भी ईसाई धनाढ्य अपने प्रचारकों को सब तरह का सुभीता देते हैं। यहां की धर्म्म-सभाएं वैतनिक उपदेशक भी नहीं रख सकतीं।

हमारे देश के शिक्षित युवा अपनी विद्यायोग्यता को सरकार

से कुछ रुपये लेकर दे डालते हैं या वकालत करके अपना लक्ष्मी-भाण्डार बढ़ाते हैं। क्या वे नहीं जानते कि तमाम सभ्य दुनियां के लोगों की दृष्टि में वे क्या चीज़ हैं? क्योंकि वे उनको नीच और लोभी प्रकृति के पुरुष समझते हैं क्योंकि वे अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये अपनी सब से प्यारी चीज़ का नाश करते हैं।

हिन्दू बालकों का ईसाई स्कूल कालेजों में पढ़ना भी हिन्दू जाति को जड़ खोद रहा है। किसी पादरी साहब से पूछा जाय कि आप के सच्चे सहायक कौन हैं तो वे जवाब देंगे कि अंगरेज और अमेरिकन उनको स्कूल बनाने के लिये रुपया देते हैं किन्तु हमारा स्कूल खाली पड़ा रहे और हमारे ईसाई मास्टर चुपचाप बैठे रहें यदि हमारे स्कूल में पढ़ने वाले ही न आवें, इससे यही लोग सच्चे सहायक हैं। हिन्दू माता पिता हमें अपनी सन्तान पढ़ाने को और अपनी मरज़ी के मुआफिक ढालने को सौंप देते हैं यही हमारे सच्चे मित्र हैं। इन्हीं के द्वारा हमारे सारे यत्न सफल होते हैं।

एक लज्जाजनक विषय और भी है कि हमारे अच्छे २ ग्रेजुएट और वेद शास्त्रज्ञ चन्दन चर्च्चित पण्डित जी ईसाइयों को हमारे ईसाई बनाने में सहायता देते हैं। थोड़े से सिक्कों के कारण उन के नौकर बनते हैं। इस लेख का लेखक बड़ी मार्म्मिकता से पूछता है कि ये ऐसा महापातक क्यों करते हैं। क्या वे और ढङ्ग से अपना उदर पूर्ण नहीं कर सकते? क्या वे मिशन की सेवा बिना किये दाल रोटी से पेट नहीं भर

सकते ? यदि वे बिना ऐसा किये अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकते तो उनके जीवन की भी हिन्दू जाति को आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जिन से हिन्दू जाति का लाभ न हो उन का जीवन मरण समान है। यदि कोई इस पृथ्वी पर बिना अपनी जाति को हानि पहुंचाए जीवित नहीं रह सकता तो बेहतर है कि वह मर जावे। जो पेट ऐसा कर्म्म करने को बाध्य करता है उस पेट का नाश होना अच्छा है बजाय इस के कि हिन्दू जाति का नाश हो। यह ज़रूरी है कि रोटी के लिये श्रम करना पड़ता है परन्तु जो पुरुष ईमानदारी से रोटी नहीं प्राप्त कर सकता बेहतर है कि वह इस दुनिया को त्याग दे।

(स्वदेश बान्धव)

अमरीका में भारतवर्ष।

इस पत्र के पाठकों में से बहुत ही थोड़े ठीक रीति से यह जानते होंगे कि भारतवर्ष के पुत्र चुपचाप इस सत्कार शील अमेरिका में क्या उत्तम कार्य्य कर रहे हैं। भारतवर्ष के साधारण लोग अमेरिका को वाशिंग्टन और इमर्सन के जन्म देश तथा "नीग्रो" लोगों की दौर्भाग्य भूमि के रूप में ही जानते हैं। धार्म्मिक प्रवृत्ति रखने वाले कुछ नौजवानों के हृदय में, स्वामी विवेकानन्द के नाम के साथ भी अमेरिका सम्बद्ध हो सकता है परन्तु बहुत ही थोड़े लोग यह जानते हैं कि इस देश में बिखरे हुए हिन्दुओं के छोटे छोटे समूह अपने देश की क्या भलाई कर

रहे हैं। आज मैं यही दिखलाना चाहता हूं कि यहां रहनेवाले हिन्दू अब तक क्या कर चुके हैं और वे आगे क्या कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि सारे संसार में केवल एक अमेरिका ही ऐसा देश है जहां से एक एकान्तबासी हिन्दू यात्री, अपने देश वासियों के लिये आशा और उत्साह से पूर्ण संदेशा भेज सकता है।

पश्चमीय देशों में से अमेरिका सब से अधिक भारतवर्ष के साथ अनुराग रखता है और इसी कारण भारत के हृदय में भी, इस आशा और स्वतन्त्रता की भूमि के लिये प्रेम का होना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार एक बच्चा अपने पितामह की गोद में खेलना पसंद करता है, उसीतरह, नई सभ्यता के पक्षपाती देशों में से सब से अल्पवयस्क और नवजात यह जाति भी, सबसे पुरानी सभ्यता की बूढ़ी माता भारत भूमि का ध्यान करके प्रसन्न होती है। कालचक्र ने एक पूरा चक्कर समाप्त कर लिया है, और आनेवाले समय की स्वामिनी जाति उस जातिकी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखती है जो पुराने खज़ानों की रक्षा कर रहीहै। यह कैसी सुहावनी वस्थिति है। ऐतिहासिक घटनाओं का यह मेल मन में कैसे कैसे भाव उत्पन्न करता है।

और देशों के लोग, भारतवर्ष को अङ्गरेजों के धन कमाने की भूमि समझते हैं। वे हिन्दुओं के प्रति दया या दुख का भाव प्रकाशित कर सकते हैं, परन्तु उन्हें कोई भी कहीं पसंद नहीं करता। ऐसी अवस्था में उनसे प्रेम करने या उनपर भक्ति रखने

का तो विचार भी नहीं हो सकता। अँग्रेज़ी झंडे के नीचे उनका कोई गौरव नहीं क्योंकि घरके नौकरों में उनकी गणना है। एक अंग्रेज़ कभी भी नहीं भूलता कि हिन्दू उसकी प्रजा है। अङ्गरेजी बस्तिओं में आर्थिक हेतुओं के कारण वे डरावने समझे जाते हैं और कई अन्य कारणों से उन पर मुकद्दमें चलाये जाते हैं और लज्जित किया जाता है। फ्रांस देश के निवासी भारतवर्ष के विषय में कुछ अधिक जानने का कष्ट नहीं उठाते। वे भारतवर्ष को ऐसी चीज़ समझते हैं जिसे दौर्भाग्यवश अङ्गरेज़ों ने उनसे छीन लिया था, और अब भी "भारतवर्ष का छिनना" जैसा शीर्षक उनके विद्यालयों की ऐतिहासिक पाठ्य पुस्तकों में पाया जाता है। मार्सेल (फ्रांस का एक बन्दरगाह) के बोझ उठानेवालों को छोड़कर (जिनके पास उन हिन्दुओं की उदारता का गुणगान करने के लिये पर्याप्त कारण हैं जो कुक कम्पनी की अधीनता में उनके देश में से होते हुए यथासम्भव शीघ्र ही लण्डन पहुंचने का प्रयत्न करते हैं) फ्रांस वासी हिन्दुओं को बहुत कम देखते हैं।

हमारे अधिकतर देशवासियों की फ्रांसीसी भाषा से अनभिज्ञता भारत और फ्रांस में एक और भी दीवार खड़ी कर देती है; क्योंकि फ्रांसीसियों से हमारी दशा जानने के लिये हिन्दी सीखने की आशा रखना निरर्थक है। सँस्कृत पढ़ने से जर्मनी के लोगों में हमारी प्रतिभा शक्ति पर भक्ति उत्पन्न हो गई है। मुझे एक बार यह देख कर आश्चर्य हुआ कि एक

साधारण शिक्षा प्राप्त किये हुए जर्मनी वासी ने भी "शकुन्तला" का अनुवाद पढ़ा हुआ था । किन्तु जर्मनी के लाग हिन्दुओं को प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम देखने पाते हैं । कुछही नगरों में थोड़े से हिन्दू विद्यार्थी और व्यापारी रहते हैं । वहां के पढ़े लिखे लोग, निस्सन्देह, राजनैतिक कारणों से, भारतवर्ष के मामलों को गहरी दृष्टिसे देखते हैं । मुझे विश्वासहै कि यदि जर्मनी के लोग हमारे विषय में अधिक जान सकें तो वे अवश्य हमारे साथ स्नेह करने लगेंगे । परन्तु यहां भी भाषा भेद ही एक दूसरे को दूर रखता है । इस समय यह बड़ी आवश्यकता है कि कुछ शिक्षित भारतवासी योरोप की प्रधान प्रधान भाषाओं का अनुशीलन करें जिससे उनकी यात्रा बम्बई से लंडन तक ही परमित न रह जावे ।

अमेरिका में सारी अवस्थाही बदलजाती है । अमेरिका का भारतवर्ष के साथ कोई व्यापार सम्बन्धी या राजनैतिक सम्बन्ध नहीं है । उसे हमारे यहां की रुई या बगदाद रेलवे से कोई सम्बन्ध नहीं है, और न वह हमारे देश को महमूद से आरम्भ होने वाले लुटेरों का स्वर्गधाम या लङ्काशायर के पूंजी वालों का मक्का ही समझता है । वह सूत्र जो हमें अमेरिका के साथ बांधता है, राजनैतिक लोहे या व्यापारी सोने की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट द्रव्य का बना हुआ है ।

यहां मैं यह बतलाना चाहता हूं कि अमेरिका और इङ्गलेण्ड में रहने वाले भारतवासियों के जीवन में बड़ा भेद है । वे

भारतवासी जो पठन, स्वास्थ्य, नौकरी विषयभोग या राजनैतिक दम्भ के लिये इङ्गलैंड में रहते हैं, हमारे समाज के सर्वोत्तम भाग नहीं हैं।

दूसरी ओर, अमेरिका में रहने वाला हिन्दू समाज भारत माता के सर्वोत्तम पुत्रों से बना हुआ है। यहां "अफ़सरों" की कृपा बूंद के प्यासे आवारागर्द राजे महराजाओं या भूखे "ग्रेजुएटों' का कोई काम नहीं और न हमें यहां राजनैतिक आजीविका से जीनेवाले ऐसे लोग मिलते हैं जिनकी देशभक्ति वहीं तक जाती है जहां तक उनके "पवित्र शरीर का बाल बांका न हो" या उनकी संकुचित धन की थैली आज्ञा दे।

अमेरिका में रहने वाले भारतवासियों को चार श्रेणियों में बिभक्त कर सकतेहैं जिनमें से तीनसहानुभूति-युक्त वर्णन के पात्र हैं। परन्तु चौथी श्रेणी उस स्थिर छायाके समानहै जो इन तीनों श्रेणियों के बर्तमान कालीन भारतरूपी पर्दे पर पड़ रही है। अमेरिका में वर्तमान भारतीय समाज के साधारण अवयव सिक्ख, स्वामी और विद्यार्थी हैं. चौथा भाग गुप्तचरों का है परन्तु उन्हें हम आसाधारण समझते हैं। बस. इसी चार तरहके भारतवासी अमेरिका में रहतेहैं। प्रसंगवश यह भी कह देना अच्छा होगा कि यहां 'हिन्दू' नामसे सब भारतवासी समझे जातेहैं, इंडियन नामसे (जिस नाम से अङ्गरेज़ लोग हमें पुकारते हैं) अमरीका के आदिम निवासी पुकारे जाते हैं। इस लिये मैं अवशिष्ट 'इंडियन' शब्द की जगह (जो अङ्गरेजी में हमारे लिये गढ़ा गया है) हिन्दू

शब्द का ही व्यावहार करूंगा। अमरीका के लोग भारतवर्ष की प्रत्येक चीज़ को हिन्दू के नाम से पुकारते हैं, जैसे—हिन्दू-संगीत, हिन्दू वर्णमाला, हिन्दू-राजनीति, इत्यादि।

मैं पहिले गुप्तचरों के विषय में ही लिखता हूं, ताकि उनसे छुट्टी पाकर औरों के विषय में अच्छी तरह लिख सकूं। ये भ्रमण-शील टकाधर्मी कभी २ हमारी बस्तियों में मित्र के रूप में दर्शन दे जाते हैं और हमारे ऐसे रहस्यों का पता लगाना चाहते हैं जिनसे हम स्वयं भी अनभिज्ञ हैं। इन की उच्छृङ्खला कल्पना शक्ति जिस व्यक्ति को अपना शिकार चुन लेती है उसी पर, इन की कृपा आरम्भ होती है। यदि तीन श्रेणियों के लोगों को हम सौरचक्र के नियत अवयव समझे तो इन भद्र पुरुषों की उपमा पुच्छलतारों ही से दी जा सक्ती है। वे अनियत और कभी २ अज्ञान वृत्त में घूमते हैं, उनकी गति के नियम ढूंढ निकालना बड़ा कठिन है; वे अशुभ सूचक होते हैं उनका कलेवर साधारण लोकों की अपेक्षा बिलकुल ही भिन्न चीज़ों से बना होता है, उनका धार्मिक पर्दा इतना पतला होता है कि उस में से हरएक उनका भीतरी हाल देख सक्ता है। और उनका उदय खूब चर्चा और वादानुवाद का कारण होता है। इन लोगों की अलौकिक प्रतिभा स्फूर्त्ति के लिये इस देशमें बहुत ही थोड़ा अवसर है क्योंकि यहां के भारतवासियों को शोरशराबे वाली हलकी राजनीति के लिये अवकाश ही नहीं मिलता और यह इनके लिये ऐसा ही आवश्यक है जैसा मछलीके लिये पानी। अमरीका

के हिन्दू निर्धन और क्रियात्मक हैं जिन्हें कई तरह के विघ्नोंका का सामना करना पड़ता है। वे लम्बी चौड़ी बातों और निस्सार गर्वोक्तियों की अपेक्षा चुप चाप, स्थिर कार्यों से अपने देश की सेवा करना चाहते हैं। इसलिए ये "दाल भात में मूसलचन्द" गुप्त चर उस प्रकाश से चौंधिया जाते हैं जो यहां की हिन्दू समाज के प्रत्येक कोने को प्रकाशित कर रहा है, क्योंकि छछूंदर और चिमगादड़ की तरह ये भी अंधेरे में ही अपना काम कर सकते हैं। अमेरिका निवासी हिन्दुओं में जैसा दृढ़ गाम्भीर्य्य स्वच्छ उत्साह, और एक रस कार्य्य लगन है उसमें इनका काम कर सकना बड़ा ही कठिन है। हमारे लोग यहां अच्छी तरह समझ गये हैं कि इन के फंदों में केवल मूर्ख देशभक्त ही फंस सक्ते हैं और इस प्रणाली के विष की सबसे अच्छी यही औषधि है कि अपने चारों ओर सामाजिक वायु मँडल स्वच्छ और उज्ज्वल रक्खा जावे; जिस में इनका उसी तरह दम घुटता है जिस तरह सूर्य्य के प्रकाश में प्लेग के कीड़ों की जान निकलती है। तब भी संसार के प्रत्येक कोने में रहने वाले हिन्दू जनसमुदाय समय समय पर इन के दर्शनों से कृतार्थ होते ही रहते हैं और विशेषता यह है कि ऐसे समयों में ये सदा भारतीय स्वाधीनता के जोशीले पक्षपाती और गर्म से गर्म नैतिक दल के अनुयायी होने का दम भरते हैं। लोगों ने मुझे बतलाया कि अभी हाल में इनका एक भाई बंद यहां आया था जो अपने आप को सन्यासी कहता था। परन्तु अनुभवी लोग उसके असली

रूप को झट पट ताड़ गये क्योंकि इनका अपने असली रूप को छिपा सकना उतना ही कठिन है जितना एक सड़ते हुए शव का अपनी सड़ांद्को। यहां के नौजवान खुले और स्पष्ट वक्ता हैं और इसी कारण गुप्तचरों को यहां कृतकृत्यता प्राप्त नहीं होती यहां उनके ढूंढ़ने के लिये कोई रहस्य ही नहीं है। यहां हमें उनके साथ चतुरता करने की ज़रूरत ही नहीं है। क्योंकि हमारे कथनों की प्रत्यक्ष निर्व्याजता ही उन्हें मूढ़ और व्याकुल कर देती है। यदि प्रत्येक गुप्तचर यहां के हिन्दुओं के वार्तालाप का ठीक २ सारांश 'इंडिया आफिस' में भेज दे तो उसके पास एकता, जापान से सीखने योग्य बातें, कलाकौशल की आवश्यकता, अमरीकन लोगों की महानुभावता, प्रजातन्त्रता के लाभ, हाथ के काम का आदर, रूज़वेल्ट की नीचता, भारतवासियों को उठाने के लिये शिक्षा की आवश्यकता आदि विषयों पर अच्छे उपदेश इकट्ठे हो जायेंगे। यदि समाचार देने वाले सिपाही विश्वासपात्र हों तो उनकी "रिपोर्टों" में यहां के हिन्दुओं के ऐसे ही कथन मिलेंगे जो हल चल मचाने वाले नहीं कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त यहां के हिन्दू कार्य्य में इतने व्यग्र हैं कि उन्हें असली देशोपकारी काम करने के लिये बहुत थोड़ा समय मिलता है। उनके हृदय में केवल इच्छाएं और आशाएं ही लहरें मारतीं हैं। जो विद्यार्थी आठ घंटे विद्यालयों में पढ़कर तीन चार घंटे मज़दूरी भी करते हैं, उनके पास और कामों के लिए क्या शक्ति बच सकती है? विद्या प्राप्ति और आचार

सुधार उनके मुख्य उद्देश्य हैं, और उचित भी यही है। हम उनके विचारों और उद्देश्यों के फल चखने के लिये तब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं जब तक वे अपने पूरे स्वामी न बन लें या अपने देश में, शिक्षा सम्बन्धी या कलाकौशल सम्बन्धी किसी विभाग में कार्य्य न करने लग जावें।

संस्कृत के कवि प्रत्यङ्ग वर्णन करते समय पांव के वर्णन से आरम्भ करते हैं। उन्हीं का अनुसरण करते हुए मैंने भी पहिले गुप्तचरों के विषय में ही लिखना उचित समझा है और इनके विषय में जितना लिखना उचित समझा है, और इनके विषय में जितना लिखा गया है वह बहुत पर्याप्त है संस्कृत। कवियों के क्रमिकोन्नति मार्ग का अनुसरण करते हुए अब मैं सिक्खोंको लेता हूं जिनकी मेहनत से अमरीकन लोग आज कल इतने ही अभिज्ञ हैं जितने पुराने समय के अफ़ग़ान उनके भुज बल से परिचित थे। ये हज़ारों की संख्यामें केलिफोर्निया औरेगान और वाशिंगटन की रियासतों में फैलें हुए हैं। वे धीरे और अप्रमत्त मेहनती हैं परन्तु उनमें से कुछ कभी २ मद्य पीकर उन्मत्त हो जाते हैं जैसा कि हाल ही में एक छोटे से नगर में हुआ था जहां से हुल्लड़ मचाने के कारण वे निकाले गये थे वे अपनी पगड़ी और धर्म को खूब बचा कर रखते हैं। वे खेतों में अच्छा धन कमाते हैं और जितना हो सके मितव्यय से निर्वाह करते हैं। वे अच्छी अंग्रेज़ी बोलना नहीं सीखते क्योंकि वे अपने आप को इस देश में अस्थिर पथिक समझते हैं और यहां रहते हुए भी सदा प्यारे

पुराने गांव और भारतवर्ष के उज्ज्वल प्रकाश को याद किया करते हैं। अमरीकन खेतिहर और फल उपजाने वाले उनकी बहुत ढूंढ में रहते हैं। क्योंकि उनकी आदतें नियमित और सरल होती हैं। देश के इस भाग में विदेशी मेहनतियों की बहुत मांग रहती है। इसके विरुद्ध कुछ ही जोशीले देशभक्त अमरीकनों ने शोर मचा रक्खा है जिनकी उत्तेजना के कारण "सैन फ्रैंसिस्कों" और कुछ बड़े नगरों में घूमने वाले आलसी भिखमंगे हैं। एक अमरीकन खेतिहर ने जो कैलिफोरनिया में फलदार वृक्षों के कई एकड़ों का स्वामी है एक बार मुझ से कहा,—देखिये, वस्तुतः मामला यह है। मैंने पहिले अमरीकन लोगों को काम दिया क्योंकि विदेशियों की अपेक्षा में उन्हें पसन्द करता था। आप भी ऐसा ही करेंगे। यह स्वाभाविक बात है परन्तु ये लोग बड़े निकम्मे होते हैं। वे एक सप्ताह तक काम करते हैं, उसके पीछे कोई आकर कहता है कि मेरे पास कमीज़ नहीं है, कोई कहता है कि उसे ओढ़न चाहिये, और इस तरह अपनी मज़दूरी में सात आठ रुपये शनिवार को ले जाते हैं। वे सब शराब पर खर्च देते हैं। उनमें कुछ से सोमवार को आते ही नहीं या किसी और काम पर चले जाते हैं और उधर मेरे हज़ारों रुपये के फल सड़ने और गलने लगते हैं। फिर मुझे आप के लोगों को, चीनियों या जापानियों को काम देना पड़ता है जिनको मेहनताना कम देना पड़ता है और काम स्थिरता से होता है।" प्रायः अमरीकन

खेतिहर सड़क पर घूमते हुए सिक्ख को आप बुलाकर काम देता है। इस तरह हमारे परिमित आहार बिहार और कठिन धार्मिक नियम विदेश में हमारे भाइयों के लिये बड़े सिद्ध होते हैं जब कि अपने देश में उन्हें काम करने का कोई अवसर नहीं मिलता। यह आशा ही न करनी चाहिये कि सिक्खों का यहां रहना सबके लिये समान सन्तोषदायक होगा। वे सीधे सादे पूर्वीय किसान हैं जो अपने आपको झट पट उस आचार और व्यवहार के अनुकूल नहीं बना सकते जो यहां के संकीर्ण सामाजिक जीवन में वर्ते जाते हैं। यहां प्रत्येक मनुष्य से जो आशाएं की जाती है, उन्हें वे पूरा नहीं कर सकते। यह कहा जाता है कि सिक्ख बड़े मैले रहते हैं, वे अमरीकन साथियों से दूर रहते हैं, और कई बार छोटी छोटी त्रुटियों के कारण उन्हें स्वास्थ्य-रक्षक अधिकारियों के हाथ बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। मैं ऐसी स्थिति में नहीं हूं, कि मैं इन शिकायतों की न्यायता या अन्यायता परख सकूं। यदि इनमें कुछ सत्य का अंश हो भी तो यही सिद्ध होगा कि सिक्ख भूल करने वाले अल्पज्ञ जीव हैं। उनके दैनिक जीवनों को हमें बड़े ऊंचे आदर्श से न जांचना चाहिये। और स्वदेश वासियों के लिये इस प्रकार के अनुदार और हलके विचार प्रकट करना और भी अनुचित है जैसा कि मैंने कइयों को प्रकट करते सुना है। इसके विरुद्ध, हमें इन अनपढ़ ग्रामीणों के उत्साह और साहस की प्रसंशा करनी चाहिये। यहां आकर उनमें बहुत शीघ्र देश भक्ति का भाव उदित

हो उठता है जो समय समय पर अपने भाइयों की सेवा करने, सामाजिक कार्यों में अधिक अनुराग रखने, धार्मिक वृत्तियों के सुचेत होजाने. अपने देश में लौट कर भी स्वाधीन आजीविका को पसंद करने और मिलकर काम करने में बीसियों तरह प्रकाशित होता है। यह शोक है कि उनकी अविद्या और सरलता के कारण कई लाग उन्हें धोखे का शिकार बनाते हैं। परन्तु हमारे इस भूमण्डल में यह बात अनिवार्य्य है। मेरी सम्मति में सिक्खों को यहां आने से धन सम्बन्धी और आचार सम्बन्धी दोनों तरहका लाभ है। उसमें बड़ा परिवर्तन आ जाता है। उसकी आर्थिक और धार्मिक निर्धनता दूर हो जाती है। वह अपना स्वयं आदर करना सीखता है। वह देशी सेनाकी रिसालदारी को लौकिक महत्व का सर्वोच्च शिखर नहीं समझता। वह यह भी देख लेता है कि 'ग्रेटब्रिटेन' के सिवाय संसार में कोई और भी शक्ति है। चुपचाप ही उसके भीतर एक तरह की क्रान्ति हो जाती है। थोड़े ही दिनों में वह डरपोक, मैला और अज्ञानी किसान नहीं रहता जो कुछ दिन पहले "सियेटल" या "सैन फ्रैंसिस्को" में मज़दूरी के लिये उतरा था। कई स्वार्थी लोग इस आर्थिक और धार्मिक उन्नति को बड़ी चिन्ता और शङ्कायुक्त दृष्टि से देख रहे हैं। परन्तु जब तक सिक्ख लोग बाहर जाते रहेंगे तब तक यह उन्नति रुक नहीं सकती। नई दशाओं में आकर इस परिवर्तन का होना स्वाभाविक ही है। जब एकबार छूट कर बारासिंगा जंगल में बिचरण करने लगा तो फिर वह

डरपोक और मुर्दार नहीं रह सकता ? क्या 'सर्कस' से बाहर निकल कर भी केसरी दुम दबाकर बैठ सकता है ? अमरीकन वायु मंडल में श्वास लेता हुआ कोई भी मनुष्य ऊंचे आचार विचार में संचरण किये बिना नहीं रह सकता। इस सर्वोत्तम प्रजातन्त्र राज्य के लहराते हुए झंडे के नीचे भीरुता, निराशा, दासता और उदासीनता उसी तरह नष्ट हो जाती हैं जिस तरह आग में सोने की मिलावट भस्मसात् हो जाती है। यहां की पताका, सदाचार के लिये अमृतधारा और धर्म के लिये संजीवनी बूटी है जो सैकड़ों उपदेशों और पुराना समय लाने वालों की सहस्रों सभाओं से कहीं बढ़कर शक्ति शालिनी है। यह आशा और शुभ कामना की दूती है जो मनुष्य जाति के निकृष्टतम भाग को भी अपने आभूषणों में परिवर्तित कर लेती है और वियाबान मरु भूमियों को फलते फूलते उद्यान बना देती है। हम उस झंडे के सामने सिर झुकाते हैं जो एकता, स्वाधीनता, सहनशीलता और वैयक्तिक उन्नति का पक्ष पाती है और जिसके साथ जातीय आक्रमण या भूत कालीन दुःखों का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिनका हृदय शिथिल और उत्साहहीन होरहा है उन्हें इस नैतिक और धार्मिक "सेनिटेरियम" (स्वास्थ्य-सुधारक स्थान) में आना चाहिये जहां सामाजिक सूर्य्य सदा अपना प्रकाश फैलाता है और जहां दूसरे जल वायु में क्षीण प्राणी सुंदर स्वास्थ्य सम्पन्न बनाये जाते हैं। महान् परिवर्तन कारी रासायनिक, वर्तमान युगका आश्चर्य्य-जनक जादूगर,

अधिक भारवती भूमि माता के उपेक्षित और अरक्षित पुत्रों का आश्रय, अत्याचारसे पीड़ित लोगों को स्वाधीनता देने वाला यहां का झंडा दूर दूर से पुराने संसार के जाति बहिष्कृत, सम्पत्ति-च्युत और पीड़ित पुत्र पुत्रियों को बुलाता है और कहता है:-"जब तक आकाश मण्डल और मेरे तहों में तारे चमक रहे हैं तब तक प्रत्येक जाति के लोग मेरी रक्षा में शान्ति और सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकारी हैं। दुःखी और विह्वल लोगो ! मेरे पास आवो, मैं तुम्हें विश्राम दूंगा।"

इस झंडेके नीचे रहनेका इससे अधिक लाभ विद्यार्थी लोग उठाते हैं। अमरीका के हिन्दू विद्यार्थी मध्यम श्रेणीके लोगोंमें से आते हैं जो, यद्यपि निर्धन हैं तथापि, बुद्धि और क्रिया शक्तिसे सम्पन्न हैं। वे कला-कौशल की शिक्षा प्राप्त करने में लगे हुए हैं। और प्रायः अपने निर्वाह के लिए धन भी स्वयं कमाते हैं। विद्यालयों में विद्याध्ययन के साथ साथ, हाथ के काम से अपने निर्वाह करने का प्रभाव विद्यार्थियों पर बड़ा अच्छा पड़ता है। इस से आत्मावलम्ब और आत्मविश्वास का भाव उत्पन्न होता है। यह विद्यार्थियों को कई तरह के प्रलोभनों से बचा सक्ता है। इस से परस्पर भ्रातृभाव और सहानुभूति बढ़ती है। इस से अभिमान और अकेले रहने की प्रवृत्ति कम हो जाती है। यह सामाजिक जीवन के कठिन और उपयोगी मार्ग के लिये लोगों को तय्यार कर देता है।

इस में सन्देह नहीं कि कई वार निर्धनता आचार को गिराने

वाली और कलह बढ़ाने वाली भी होती है। निर्धनता के कारण लोग बुरे साधनों से धन कमाने में प्रवृत्त होते हैं। इसी के प्रभाव से कई नौजवान यहां योग के अध्यापक या फलित ज्योतिषी बन बैठते हैं और इस तरह धोखे और छल से काम निकालते हैं। परन्तु यदि सारी बातों पर ध्यान दिया जावे तो यह प्रकार लाभदायक और आलस्य से बचाने वाला ही प्रतीत होता है। यह प्रकार, नौजवानों के अपरिपक्व जोश को रोके रहता है, जिस जोश का दुरुपयोग, कुछ अदूरदर्शी देशभक्त देश की भलाई के लिये लेना चाहते हैं। इससे नौजवानों को समाज के धीर और विचार शील अवयव बनने और सामाजिक तथा नैतिक झगड़ों के प्रवाह से बच निकलने का अवसर मिलता है, जिसमें कई नौजवान पड़ कर नष्ट होगये हैं। इससे उन्हें जीवन का वास्तविक रूप और कठिनाइयें देखने को मिल जाती है, और फिर उन्हें वह जोश झट पट उत्तेजित नहीं कर सक्ता जो फूस में लगी हुई आग की तरह उठतेही बुझजाता है। इस तरह की अवस्थाओं में रहने से विद्यार्थियों को अमूल्य लाभ प्राप्त होते हैं। रियासती विश्वविद्यालयों में शिक्षा बड़ी सस्ती है। और योग व्यक्तियों के लिये काम का तोड़ा नहीं है। कई विद्यार्थी किसी धनी परिवार में तीन से पांच घंटे तक घरेलू कामों में सहायता देकर अपने रहने और भोजन का खर्च निकाल लेते हैं। क्योंकि यहां नौकर इतने दुर्लभ हैं कि बहुत धनी ही एक आध "काला" नौकर रखने का व्यय सहार सक्ते हैं। मैंने उच्च सामाजिक स्थिति रखने वाली महिलाओं को अपनी रोटी

पकाते और घर साफ करते देखा है। निर्धन, परिश्रमी, और बुद्धि मान विद्यार्थियों के लिये अमरीका बड़ा लाभ दायक देश है। यदि कोई सरल और कठोर जीवन व्यतीत कर सक्ता है. तो अपने घर से रुपया न आने पर भी वह यहां की "डिग्री" ले सकता है। परन्तु लौटने के किराये का पूरा प्रबन्ध कर छोड़ना चाहिये। विशेष आवश्यकता या रोगी होने पर भारतवर्ष में उसे कोई अपना आश्रय भी ढूंढ़ रखना चाहिये। विद्यार्थियों को जो काम मिलता है उन से खाना पीना ही हो सकता है. उसमें कुछ बचाना कठिन है। कई विद्यार्थी, विश्वविद्यालयों की पढ़ाई समाप्त करने पर निराश्रय हो जाते हैं और आश्चर्य्य से देखते हैं कि उनको "डिग्री" ६०० रुपये का टिकट ले देने में समर्थ नहीं है। कई लोग झूंठे प्रकारों से रुपया इकट्ठा करने लगते हैं अतएव ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि भविष्यत् में ऐसी घटनायें न हो सकें क्योंकि असज्जनता के व्योहार से अमरीकन लोगों में हमारी प्रतिष्ठा कम होती है और भविष्यत् में कठिनाइयों के बढ़ने की सम्भावना है। जिस निर्धन विद्यार्थी के पास लौटनेका किराया मिल सक्ताहै उसे यहां आनेसे न डरना चाहिये। परन्तु जो शक्ति या भाग्य पर ही निर्भर रहते हैं उन्हें यहां न आना चाहिये क्योंकि इन गुणों से दैनिक रोटी कमाई जा सक्ती है, किन्तु इन से परिवर्तन में बड़ी धन की राशि मिलना कठिन है। आलसी और दरिद्री विद्यार्थी दूसरों को जोंक की तरह लग जाते हैं परन्तु इससे परस्पर अविश्वास और आपस

का झगड़ा बढ़ता है, क्योंकि हम में धन से बढ़ कर द्वेष फैलाने वाली वस्तु कोई भी नहीं है।

हमारे विद्यार्थी मानसिक योग्यता का बहुत अच्छा परिचय देते हैं, वे अपने परिश्रम और योग्यता से परिक्षा में बड़े अच्छे रहते हैं और अपने अध्यापकों से प्रशंसा प्राप्त करते हैं। बहुत ही कम अनुत्तीर्ण होते हैं। यहां धनी और आलसी लोग नहीं आते। इसी लिये पढ़ाई लिखाई में ये बहुत ऊंचा दर्जा प्राप्त करते हैं।

अब मैं अंतिम श्रेणी की ओर आता हूं जिनके विषय में मुझे कुछ कहना है और वे सन्यासी हैं। मैं पहलेही कह देना चाहता हूं कि स्वामी और स्वामियों में भेद है। सबही चमकीली चीजें सोना नहीं होतीं। यहां के कुछ सन्यासी बड़े प्रतारक जो धर्म की आड़ में धन संग्रह और इससे भी बढ़ कर पाप करते हैं। यहां की सभ्यता के निकृष्ट भागों ने उन्हें अपना दास बना लिया है। वे संसार की चिन्ता से रहित, बड़े आराम से अपना जीवन बिताते हैं। वे प्रौढ़ स्त्रियों से खूब रुपया ठगते हैं। यहां के कुछ स्वामी इस तरहके अवश्य हैं। वे हिन्दू समाज के कलङ्क हैं। वे अपनी आत्मिक-विद्या फैलाने का काम चुप चाप करते हैं और उन्हें अधिक कृतकृत्यता नहीं होती।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित "वेदान्त मिशन" के साथ सम्बन्ध रखने वाले स्वामी बहुत सच्चे और गम्भीर हैं और अमरीकन लोगों का बड़ा भला कर रहे हैं। सम्भव है उनमें से

एक या दो आदर्श से नीचे हों। और मैंने एक के विषय में कई शिकायतें सुनी भी हैं। परन्तु बर्तनों में तवे सब जगह ही होते हैं। मानवीय स्वाभाविक दुर्बलता और रहन सहन के पश्चि-मीय तरीकों को ध्यान में रख कर देखा जावे तो मानना पड़ेगा कि स्वामियों का जीवन बड़ी उच्च श्रेणी का है और वे उस कृत्यकृत्यता के योग्य हैं जो जो उन्हें प्राप्त हुई है। जब स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ के शिकागो धर्म सम्मेलन में व्याख्यान दिया था और श्रोताओं को "अमरीका के भाइयो, और बहिनों" कह कर सम्बोधन करने में खूब तालियें प्राप्त की थीं तब उनके स्वप्न में भी न था कि उनके पीछे कार्य्य-परायण उपदेशक उनका काम पूरा करेंगे। उनके उपदेशों का शुभ प्रभाव चारों ओर देखने में आता है। अमरीका के लोग हिन्दुओं से धर्म सीखने के लिये बड़े उत्सुक रहते हैं। पढ़े लिखे लोग सदा समझते हैं कि प्रत्येक हिन्दू योगी है या उसे होना चाहिये। हिन्दू-विचारों के लिये बड़ा अनुराग उत्पन्न हो रहा है। कई सच्चे जिज्ञासु अपने आदर्श की प्यास को हिन्दुओं के दर्शन स्रोत से बुझाना चाहते हैं। बोस्टन की एक अध्यात्म—विद्या सम्बन्धिनी सभा में घुसते ही मुझ से एक महिला ने पूछा कि क्या मैं "मानसिक-चिकित्सा" जानता हूं। कई अमरीकन उपदेशक भी "कर्म" पर उपदेश देते हैं यद्यपि वे हमारे विचारों को बड़ी अपूर्णता से समझते हैं। यहां "थ्यासोफ़ी" की भी पर्याप्त उन्नति है और श्रीमती कैथराइन टिंगले की अधीनता में

केलिफ़ोर्निया के पौइंटप्लोमा में नियमित राजयोग कालेज है। कई धनवती और शिक्षित महिलायें हिन्दू धर्म में, बड़ा अनुराग प्रकाशित करती हैं और बैठकों की सजावट के लिये रक्खी हुई बुद्ध की मूर्तियों के सामने धूप दीप जलाती हैं। कई अमरीकन महिलाओं ने हिन्दू नाम भी रख लिये हैं। और वे वेदान्त का प्रचार करती हैं। उनमें से मुखिया एक पढ़ी लिखी महिला, भगनी "देव माता" है जो भारतवर्ष में दो वर्ष तक वेदान्त पढ़कर अभी लौटी है और अब इस देश में वेदान्त का प्रचार करेगी। हमारे विचारों से उसकी अभिज्ञता बड़ी प्रशंसा योग्यहै और उस से मिल कर और "प्राणायाम तथा "सार्वभौम" धर्म के रूप में वेदान्त पर व्याख्यान सुन कर मैंने बड़ा आनन्द प्राप्त किया। स्वामी लोगों के परिश्रम से उच्च श्रेणी के लोगों में हिन्दू विचार साधारणतः फैल गये हैं और हमारी "दार्शनिकों की जाति" होने की विख्याति फैल गई है। हिन्दू-जातीयता, इन लोगों में मिलने जुलने का एक प्रमाणपत्र होगया है, और यदि इसके साथ इस व्यक्ति में कोई असाधारणता हो तब तो निस्सन्देह वह प्रीति, भक्ति और नम्रता के भाव में परिणित हो जाती है। मेरे एक मित्र ने पैदल घूमते हुए, एरिकज़ोना और दक्षिण मेक्सिको के दूर भागों में भारतीय धर्म और राजनीति पर व्याख्यान दिये हैं। लोग उनका व्याख्यान बड़ी रुचि से सुनते थे और उनकी प्रतिष्ठा करते थे। अमरीकनों की बुद्धि बड़ी जागृति और प्रश्नशीला होती है। वे सब के विषय में

सब कुछ जानना चाहते हैं । वे भारतवर्ष को रहस्यों और अद्भुत बातोंकी भूमि तथा सांप, ज्योतिषी, योगी, महात्मा, हाथियों का निवास स्थान समझते हैं । इसीलिये यहां का नाम उन्हें मोह लेता है । वेदान्ती स्वामी उन की इस उत्सुकता को पूरा कर देते हैं, और उन्होंने कई नगरों में अपने चारों ओर भक्त शिष्यों के छोटे समूह इकट्ठे कर लिये हैं । बोस्टन, न्यूयार्क वाशिंग्टन, पिट्सवर्ग, सेनफ्रैंसिस्को, और लोए'जल में वेदान्त शिक्षा के केन्द्र हैं । सेनफ्रैंसिस्को की सभा विशेष वर्णन के योग्य है क्योंकि इस के पास एक अपना मन्दिर भी है, और वहां के प्रबन्धकर्त्ता भी अपनी पुस्तिका में यह लिखने का सदा ध्यान रखते हैं कि "यहां केवल एक यही हिन्दू मन्दिर है" । इस सभा की कृतकृत्यता का कारण स्वामी त्रिगुणातीत और स्वामी प्रकाशानन्द की कार्य्य शक्ति है । इन स्वामियों में निस्सन्देह सच्चा धार्मिक जोश है । मन्दिर की बनावट बहुत सुन्दर है । अढ़ाई वर्ष की विदेश यात्रा के पीछे इस मन्दिर को देख कर मुझे घर याद आ गया और मैंने सोचा कि आगे से केवल एक यही हिन्दू मन्दिर है जिसे मैं देख सकूंगा । हरिद्वार और हृषीकेश के दृश्य मेरी आंखों के सामने घूमने लगे और कल्पना मुझे उन शान्ति और समाधि के निवासस्थानों में उड़ा ले गई जिन्हें मैं सदा के लिये "नमस्ते" कह चुका हूं । मैं उन पुण्यस्थलों के पवित्र पवन के लिये अभी भी उत्कण्ठित हूं जहां के शान्त कोनों में विचरता हुआ एक एक श्वास समाधिकारी चिन्ताहारी और आत्मोपकारी है ।

और मैं उसी तरह का एक स्थान पश्चिम में ढूंढ़ने का यत्न कर रहा हूं जहां पूरी आत्मिक उन्नति कर सकूं, जो ऐसी गर्म और सम जलवायु में हो सक्ती है जैसी हमारी पुण्य भूमि को मिली है। रत्नमयी पेरिस नगरी के सुहावने मार्गों में, योरप के नकली हिमालय एलपस पर्वत की चट्टानों पर सूर्यो-द्भासित सुन्दर इटली के मैदानों में, 'नव इङ्गलैंड;; के किनारों पर टकराने वाले हिमाच्छादित अटलांटिक महासागर के तीर पर, मेरा मन हिन्दू धर्म के झूलन की ओर दौड़ता है जहां कपिल से लेकर रामतीर्थ तक हिन्दू-मुनि आत्म बोध और तत्वज्ञान प्राप्ति के लिये जाते रहे हैं। उसे हम भारतवर्ष के धर्म परायण महात्माओं को शिक्षाभूमि कह सकते हैं। परन्तु संसार के इस पश्चिमी भाग में शोर, हिम, लोकाचार और रूढ़ी ही दीख पड़ती है। यहां संसार हमारे साथ सदा चिपटा रहता है। सम्भव है मेरा चिरवाञ्छित शांति धाम मुझे दक्षिण कैलिफोर्निया में मिल सके जहां कि भारतवर्ष जैसे जलवायु में अप्रतिहत समाधि और सच्चे संन्यास का अभ्यास हो सकता है।

इस वैयक्तिक विषयान्तर-गमन से घर में रहने वाले पाठक उन भावों की गहराई का अनुमान कर सकते हैं जो, प्रवास में घर सम्बन्धी किसी भी चीज के देखने से हमारे हृदय में उदित हो उठते हैं। एक छोटा हिन्दू मन्दिर क्या चीज है? भारतवर्ष में ऐसे सैकड़ों विद्यमान हैं। हां, प्यारे

पाठक ! तुम्हारे लिये यह कुछ नहीं। तुम सदा भारतीय वसन्त का आनन्द लेते हो, तुम कोकिल का गान और कमल विकाश देखते हो पर उन पर एक क्षण भर भी विचार नहीं करते। तुम्हारे लिये एक कमल केवल कमल है, परन्तु हमारे लिये यह इससे भी बढ़ कर है। इस की एक एक पंखड़ी हमें उन चीजों का स्मरण कराती है जिन्हें हम अपने देश में छोड़ आये हैं, और जब तक कोई असम्भव बात ही न हो जाय तब तक हमें देखने का अवसर न मिलेगा। इसलिये सेन फ्रैंसिस्को के मन्दिर की प्रशंसा अत्युक्ति भरी न समझनी चाहिये। उस दिन मैंने एक अमरीकन महिला से कहा—"मैंने तब तक भारतवर्ष का मूल्य नहीं समझा था जब तक सदा के लिये वहां से बिदा नहीं हुआ था।" और तब मैंने उन अद्वितीय अवसरों का वर्णन किया जो भारत को जल-वायु और लोगों के आचार व्यवहारों के कारण हमें धार्मिकोन्नति के लिये पर्याप्त हैं।

मन्दिर के अन्दर घुसते ही मेरे हृदय की लहरें वेदान्त के प्रभाव से शान्त होने लग गईं क्योंकि अपने मनोविकारों को रोकने की शिक्षा के अतिरिक्त और वेदान्त क्या सिखाता है? अमरीकन शिष्यों द्वारा बनाये हुये, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के चित्रों से मन्दिर सुशोभित था। इस के अध्यक्ष स्वामी प्रत्येक आदित्यवार को तीन व्याख्यान देते हैं, गीता की पाठशाला चलाते हैं, योगाभ्यास की शिक्षा देते हैं और एक छोटी सी "स्वाधीनता की वाणी" नामक पत्रिका

निकालते हैं। उनके कई शिष्य संस्कृत पढ़ते हैं और गीता का मूल संस्कृत में पाठ करते हैं। कुछ जोशीले योरप निवासी उपदेशक बनने के लिये ब्रह्मचारी बनकर रहते हैं। स्वामी त्रिगुणातीत ने वहां अच्छी सामाजिक स्थिति प्राप्त करली दीखती है और इसी से १९१५ में सेन फ्रेंसिस्को में होने वाली पनामा प्रदर्शिनी के भारतीय विभाग के ये अधिष्ठाता नियत हुए हैं। स्वामियों ने, केलिफोर्निया में शांति आश्रम स्थापित कर के अपनी विशेष आध्यात्मिक प्रवृत्ति का परिचय दिया है जहां उनके शिष्य समाधि और आध्यात्मिक शिक्षा के लिये, प्रति वर्ष एक मास तक रहते हैं। भारतवर्ष में ऐसी बात का चाहे हम पर कुछ प्रभाव न पड़े। परन्तु हम अशान्त और कोलाहलकारी अमरीकन लोगोंको नहीं जानते जो सदा किसी न किसी नई बात की चाह में रहते हैं। उनमें जरा भी अन्तर्ध्यान नहीं है। वे अन्तर्ध्यान से उतनाही विरोध रखते हैं जितना हत्या से। उन्हें मानसिक "समत्व" सिखाने के लिये साधन करवाने पड़ते हैं। किसी अमरीकन को ध्यान के लिये पर्वत में भेज सकने की अपेक्षा सिंह को पालतू बनाना या वायु को बांधना सुलभ है। वह नहीं समझ सक्ता कि सच्चे जीवन के तिरोहित रत्न सभा, मंडी, नाटक घर और गिर्जे से बहुत दूर पड़े हैं। शान्ति आश्रम, स्वामियों के अव्यर्थ प्रचार का ज्वलन्त प्रमाण है। इस में कोई संन्देह नहीं कि अमरीकन लोग यहां हिन्दुओं से बड़ा लाभ उठाते हैं।

यह वेदान्त प्रचार का उत्कृष्ट फल है कि ये व्याकुल, हलके और विषय-दास अमरीकन भी हिन्दू-धर्म शास्त्रों के अनुसार शान्ति आश्रम में अपना जीवन बिताने का प्रयत्न करते हैं। मेरी इच्छा है कि यह फले फूले।

और भी कई ऐसी बातें हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि ये स्वामी अपना प्रचार बड़ी गम्भीरता से करते हैं। और इनके शिष्य उन "तमाशबीनों" में से नहीं हैं जो अपना धर्म उसी तरह बदल लेते हैं जिस तरह पेरिस की स्त्रियें अपना "फैशन"। दो अमरीकन स्त्री पुरुषों ने हिन्दू मंदिर में अपना विवाह करवाया है। धर्म द्वारा सामाजिक जीवन के नियमित होने से पता लगता है कि नये मत की नींव आवेश और दूरदर्शिता के साथ रक्खी जा रही है। इस तरह वेदान्त केवल एक दार्शनिक मत होने के स्थानमें जीता जागता धर्म बन जायगा। एक और स्मरणीय घटना रामकृष्ण परमहंस का बीस मार्च को जीवनोत्सव था जब दिन भर श्रोताओं ने व्रत रक्खा और वे १५ घण्टे तक एक स्थिति में खड़े रहे। सभा के धन संग्रह की अपेक्षा यह कार्य्य सभासदों की भक्ति और स्नेह का अधिक निश्चायक है। ये लोग आदित्यवार के दिन प्रातःकाल अपने पेट को खूब भरकर गिरजे जाते हैं जिससे उपदेश सुनते समय धार्मिक भावों के घुसने के सब द्वार बन्द हो जावें। ये स्वामियों की बुद्धिमत्ता और आत्मिक शक्ति का बड़ा भारी प्रमाण है कि उन्होंने इन अधिक भोजी स्वार्थी

अमरीकनों में से थोड़ों को आत्मसंयम और तप का मूल्य सिखला दिया है। जिनका अभ्यास प्रत्येक हिन्दू करता है। अमरीकन लोगों को १५ घण्टे तक व्रत रखने और एक स्थिति में बैठने के लिये उद्यत कर सकना जादू से कुछ कम आश्चर्य्य-जनक नहीं है।

शायद् किसी की भूल हो इसलिए मैं कह देना चाहता हूं कि मैं स्वय वेदान्ती नहीं हूं। मैं अध्यात्म विद्याको मूढ़ झूंठा और भ्रममूलक समझता हूं। परन्तु मैं उन लोगों के कामको श्रद्धासे देख सका हूं जो मनुष्य जीवन में आदर्श अध्यात्मिक साधनों का प्रवेश कराना चाहते हैं चाहे वे किसी भी मतके पक्षपाती क्यों न हों। मैं इसलिए भी वेदान्त प्रचार की कृतकृत्यता में अनुराग रखता हूं क्योंकि यह उन स्वार्थ त्याग और सांसारिक भावों का प्रतिनिधि है जो अब भारत में परिवर्तन ला रहे हैं। इनका काम उस पुनरुज्जीवन का एक भाग है जो हिन्दू समाज में नया जीवन फूंक रहा है।

कुछ समालोचक पूछ सकते हैं कि जब भारत में इनके लिये इतना काम है तो ये अमरीका में क्यों आते हैं। यही आक्षेप ईसाई पादरियों पर किया जाता है जो अपने नगरों के दुराचारी और अज्ञानावृत लोगों को छोड़ कर भारतवर्ष और चीन में ईसाई बनाने जाते हैं। इस प्रकार के आक्षेप दिखाते हैं कि आक्षेपकों को, मनुष्य के हृदय में कार्य्य करने वाली शक्तियों का पूरा ज्ञान नही है। वायु अपनी इच्छानुसार

बहती है और कोई नहीं बता सकता कि यह कहां से आती है और कहां जाती है। एक तरह का आदर्श एक व्यक्तिको उच्च दशा में पहुंचा देता है परन्तु दूसरे पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। प्रत्येक को अपना आदर्श कार्य्य में परिणत करना चाहिए। यह कोई आवश्यक नहीं कि सब मेरे ही आदर्श को मानने लगें। आत्मिक शक्ति सहस्रों आकारों में प्रकट होती है। हम में से प्रत्येक की एक ही तरह की शक्ति और उद्देश्य नहीं हैं। इस तरह तुम गुलाब को चंबेली न होने का दोष दे सक्ते हो और कोयल को बुलबुल न होने से निन्दा कर सकते हो। कला, साहित्य, विज्ञान, राजनीति, युद्ध और खोज इत्यादि भिन्न २ विषय हैं, इन में से कोई एक से स्नेह करता है और दूसरा दूसरे विषय से। हमें अनुदार और संकुचित विचार न रखने चाहिए। जैसे एक स्त्री अपने एक पति को चुन लेती है और फिर अपने व्रत पर पक्की रहती है इसी तरह हम में से प्रत्येक को आदर्श मार्ग पकड़ लेना चाहिए और हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जब किसी जाति की गाढ़ निद्रा टूटने से उसमें शक्तियें प्रादुर्भूत होती हैं तब वे कई तरह के कार्य्य करना और कई उद्देश्यों तक पहुंचना चाहती हैं। शक्ति एक ही मार्ग में बन्द नहीं रह सक्ती किन्तु वह भिन्न २ पथ पकड़ती है। जिस भावने कोलम्बस को अमरीका भेजा उसी ने लूथर को "डायट आव वर्म्स" भेजा। योरुप के पुनरुज्जीवन के समय

गैलीलियो, दूसरे समय शेक्सपीयर, नौक्स बेकन, काल्विन आदि सब ने एक ही स्रोत से शक्ति प्राप्त की थी। इसी तरह हमारे में से वे जो समझते हैं कि जीवन सुख प्राप्ति के लिये नहीं किन्तु किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये है एक ही शक्ति द्वारा प्रेरित हो रहे हैं। यह एक साधारण मत है जिस पर केशव और दयानन्द, महेन्द्रलाल सरकार और आनन्दी बाई जोशी, बंकिम और रवीन्द्र, अरविन्द्र घोष और तिलक, जे सी बोस, विवेकानन्द, सयाजी राव गायकवाड़, मुंशीराम लाजपतराय और परमानन्द चलते हैं। और ये ही सब नव भारत के नेता हैं जिन्होंने कला, विज्ञान, राजनीति या धर्म में विशेषता प्राप्त की है। अतएव अपने आदर्श की ओर न आने के कारण निन्दा की अपेक्षा प्रत्येक को दूसरों की कृतकृत्यता पर प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये। यदि हम यह बात ध्यान में रक्खें तो हमें पता लग जायगा। कि प्रत्येक वह हिन्दू प्रशंसा का पात्र है जिसने लोगों की भलाई के लिये कुछ काम किया है। इसी भाव से प्रेरित हो कर हमें उन स्वामियों की प्रशंसा करनी चाहिये जो हिन्दू धर्म को " आक्रमणकारी " बना रहे हैं क्योंकि यह उन का उद्देश्य है और वे इस की पूर्त्ति में लगे हुऐ हैं।

और यह भी विचारने योग्य बात है कि भारतवर्ष को सदा मांगने की जगह और जातियों को कुछ देना भी चाहिये। हमारे विद्यार्थी जर्मनी, इंग्लैंड, जापान और अमरीका के द्वारों

पर शिल्पशिक्षा के विनीत याचकों के रूप में सदा खड़े रहते हैं। परिवर्तन में हम इन देशों को क्या देते हैं? क्या हम में आत्मसम्मान नहीं है? अथवा हम बुद्धि-धन-शून्यों के पास कुछ नहीं है जिस से उन का ऋण चुका सकें; अब हमारे लिये उचित है कि विज्ञान और कला की व्यापार मंडी में केवल याचकों के रूप में खड़े न रहें। हमें भी कुछ अपनी वस्तुयें दिखलानी चाहिये जिस के परिवर्तन में हम उन से उन द्वारा निकाली हुई और पूर्ण की हुई मूल्यवान् वस्तुयें मांगते हैं। अपने देश से कुछ कार्य्यकर्त्ताओं के बाहर जाने से जो हानि होगी उस की अपेक्षा आत्मसम्मान की प्राप्ति के कारण जो लाभ होगा वह बहुत अधिक है। वर्तमान भारत वर्ष, बायालोजी से ले कर साबुन निर्माण तक की विद्या में शिष्य और याचक है। परन्तु वह उन के परिवर्तन में दो वस्तुयें दे सका है—अपना तत्वज्ञान और धार्मिक जीवन का आदर्श और ऋण चुकाने के लिये ये पर्याप्त हैं। वर्तमान भारत निस्सहाय और गिरा हुआ है परन्तु वह प्रत्येक सन्तति में कुछ ऐसे मनुष्य उत्पन्न कर देता है जो भूमि के सार कहे जाने चाहिये-यदि वे जो केवल अपने आप को समझ सकें। हिन्दू समाज सर्व्वतोभावेम अत्यन्त आचार हीन और कलुषित है, और पश्चिम के पुर्तगाल, स्पेन, बलगेरिया और इटली जैसे निकृष्ट देशों के साथ भी समानता नहीं कर सका। परन्तु मेघों में से विद्युत के समान उस में से कभी २ ऐसी

आत्मायें निकल आती हैं जो इमर्सन और टालस्टाय की समानता कर सक्ती हैं, और यदि वे विस्तृत संसार में निकलें तो मनुष्य जाति पर विपुल प्रभाव डाल सक्ती हैं। इसलिए पुरानी अध्यात्मिक विद्या और आदर्श जीवन के जीते जागते उदाहरण ये दो चीजें जो भारतवर्ष औरों को दे सक्ता है इस से अधिक संसार क्या चाहता है? कला के रहस्यों और यांत्रिक विद्या के बदले ज्ञान और धर्म का दान-यह बहुत ही उदार दान है। इस दृष्टि से भी स्वामियों का कार्य्य लाभदायक और आवश्यक है। भारतवर्ष को चाहिये कि स्वार्थी हो कर यथा सम्भव लेने का प्रयत्न करने की अपेक्षा वह भी संसार के विद्या-भंडार में कुछ न कुछ अपना भाग डालता रहा करे।

अन्त में मैं अपना विश्वास प्रकट करना चाहता हूं कि हिन्दू समाज में अभी तक जीवनाग्नी विद्यमान है परन्तु उसे उत्तेजित करने की आवश्यकता है। अमरीका में स्वामियों, विद्यार्थियों और श्रमियों का दिखाया हुआ आत्मा-वलम्ब और निर्माण-कौशल मरी हुई जाति के लोगों में रहना असम्भव है। भारतवर्ष मरा नहीं, पर जीता है। अमरीका में हिन्दुओं को काम करते हुए देख कर ये वाक्य स्वभावतः यात्री के मुख से निकल पड़ते हैं। यह पुराने आर्यों का भाव है जिन्होंने देश को बसाया था और धार्मिक तथा दार्शनिक मत प्रकाशित किये थे। उसी जीवन का यहां फिर से दृष्टान्त दीखता है। सिक्ख बसने वाले मज़बूत आर्यों के प्रति-

निधि है, विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्य का जीवन व्यतीत करते हैं और स्वामी अगस्त्य और वशिष्ठ के प्रतिरूप हैं जो म्लेक्षों की शिक्षा के लिये आश्रम खोलते थे ? यहां साधारण किसान में भी जो परिवर्तन आ जाते हैं वे वतलाते हैं कि उसके हृदय में, छिपा हुआ सामाजिक भाव और जोश विद्यमान है जो उन दोषों को भस्म कर सक्ता है जिनसे हम पीड़ित हो रहे हैं। मेरा प्रीति पूर्ण हृदय, स्वदेश वाशियों को आशा का संदेश भेजता है। कहावत है कि प्रत्येक काले मेघ के किनारे पर रुपहली रेखा होती है। इस समय जो लोग भारतवर्ष में रहते हैं केवल काले बादल और विद्युत् की गर्जनाही सुनते हैं। कि सूर्य्य सदा के लिये छिप गया है। परन्तु मैंने उस रुपहली रेखा को देख लिया है जो उनके लिये अदृश्य है। मैंने वह यूरुप और विशेषतया अमरीका में देखी है जहां स्वार्थत्याग, दृढ़ता आचार, और परिश्रम का भाव प्रत्यक्ष है। यहां मुझे पता लगा है कि हमारे देश वाले प्रतिकूल अवस्थाओं में भी श्रेष्ठ गुणों का प्रकाशन कर सक्ते हैं और कृतकृत्य हो सकते हैं। यहां बात थोड़ी परन्तु काम बहुत होता है, यहां भविष्यत् मनोरथों की अपेक्षा वर्तमान कृतकृत्यता की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। येही गुण राष्ट्र निर्माण के लिये आवश्यक हैं, विचित्र धार्मि यो राजनैतिक विचार और व्याख्यान तथा लेख निरर्थक हैं।

भारतवर्ष मरा हुआ नहीं पर जीता है। विदेश में बहुत

कुछ हो रहा है जिसका स्वदेश में ज्ञान नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को चुपचाप परन्तु गम्भीरता से कार्य्य करना चाहिये कि काल जो अनाज को पकाता है और शरद् के पीछे वसन्त को लाता है जो पत्थर से पशु और पशु से मनुष्य बना देता है, जो योरुप के जङ्गली लोगों को विज्ञान और कला में प्रधानता दिला चुका है, और जो कुछ समय पहले रोम के दासों को भूमि का सम्राट बना चुका है, समय—वह महान् शिल्पी समय जो अघातों का चिकित्सक और पापों का बदला लेने वाला है, हमारे शरीर के भस्मसात हो जाने पर भी हमारे प्रयत्नों को सफल करेगा।

(सद्धर्म्म प्रचारक)

यूरोप की नारी।

यदि किसी कन्या से उसके जन्म लेने के पहिले पूछा जावे कि तुम पूर्व देश में जन्म लेना चाहती हो या पश्चिम में वह क्या जवाब देगी? वह हो न हो, यही कहेगी कि मैं जन्म ही नहीं लेना चाहती। बात सच है, क्योंकि क्या पूर्व, क्या पश्चिम क्या हिन्दुस्तान क्या इंगलिस्तान, सभी देशों में स्त्री की दशा एक सी है, सभी देश की स्त्रियां पुरुषों की गुलामी करती हैं जब गुलामी ही करना बदा है, तब क्या पूर्व देश, क्या पश्चिम? "कोउ नृप होय, हमैं का हानी। चेरी छांड़ि न होइबे रानी।" जहां जांय स्त्रियों को चेरी ही बनके रहना पड़ेगा।

परन्तु गुलामी किये बिना किसी के दिन नहीं कटते। पुरुषों का भी तो गुलामी करनी पड़ती है! राज-सम्बन्धी गुलामी' नीति-सम्बन्धी गुलामी' धन-सम्बन्धी गुलामी' विद्या बुद्धि बल सभी बातों में किसी न किसी तरह से पुरुषों को भी तो बन्धन में रहना पड़ता है। इससे स्त्रियां भी उनकी योग्यता के अनुसार किसी बन्धन में न रहें तो क्या विचित्र है बात तो ठीक है, परंतु स्त्रियों का बन्धन और भी अधिक नीच है। वे गुलामों की गुलामी करती हैं।

इस सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम में एकही दशा है, अंतर कुछ नहीं है। अङ्गरेज पादरी और दूसरे आत्माभिमानी यूरोपियन और अमेरिकन लोग कहा करते हैं कि उनकी स्त्रियां समाज में बहुत ऊंची जगह पर प्रतिष्ठित हैं' व मर्दों की बराबरवाली समझी जाती हैं, उनको सच्ची स्वाधीनता का सुख मिलता है, और सब बातों में वे पूर्व देशों की स्त्रियों से अधिक सुखी, अधिक बुद्धिमती और अधिक चतुर हुआ करती हैं। सुनने में ये सब बातें बहुत अच्छी लगती हैं, पर इनमें बस इतना ही ऐब है कि बिलकुल झूठ बातें हैं।

यह डींग कि पश्चिमी स्त्रियां पूर्वी स्त्रियों से अधिक सम्मानित हैं, पुरुष उनका अधिक आदर करते हैं, बिलकुल झूठी है— इतनी झूठी है कि उससे घृणा होने लगती है। स्त्रियों के

सम्बन्ध में पुरुष सब जगह एकसे स्वार्थी पशुवत् आचरण करते हैं । यूरोप की स्त्रियों में यदि किसी किसी बुराई की कमी है, तो बहुत सी बातों में उनमें इनसे भी बढ़ चढ़कर कितनी ही बुराइयां पाई जाती हैं। दोनों समाजों की दशाओं में थोड़ा बहुत अंतर तो जरूर ही होगा, परंतु उससे स्त्रियों की असली दशा में बहुत अंतर नहीं पड़ता। दोनों देशों में जैसे एक ओर कुछ अच्छी बातें है. उसी तरह दूसरे पल्ले में उतनी ही बुराइयां भी मिलती हैं। उन्नति दशावाली डींग तो स्वप्न की बात है।

कुछ दृष्टान्त देने से ऊपर का कथन स्पष्ट हो जायगा। पहिले बड़े घरों की बात लीजिये । क्योंकि बड़े घरों ही में विद्या स्वाधीनता, सम्मान आदि की डींग ज्यादः हांकी जाती है। और इन्हीं बड़े घरों की मेम साहबों की नकल उतारना आज कल हमारे देश के भी बहुत से विद्याभिमानी लोग अपना जीवन सफल करने में एक मात्र सहायक समझते हैं। हमारे विद्याभिमानी हिन्दुस्तानी भाई देखते हैं कि इनकी स्त्रियां कालेज जाती हैं। पियाना बजाती हैं, नई नई पुस्तकें पढ़ती हैं, लेकचर देती हैं, उपन्यास लिखती हैं। इनकी चाल ढाल देखकर वह मोहित हो जाते हैं और झट से समझ लेते हैं कि इनकी दशा बहुत उन्नत है। हमारे भाई यह नहीं देखते कि इस चाल-ढाल में कितनी धूर्त्तता, कितनी घृणा, कितना दुःख. कितनी निर्दयता भरी रहती है, यद्यपि ऊपर से सुन्दरता की बहार और सभ्यता

की भड़क नेत्रों में चका चौंध लगा देती है। वे नहीं समझते कि इन बातों से स्त्रियों का कितना भारी अपमान होता है। स्त्रियों को ये सब बातें क्यों करनी पड़ती हैं ? पति ढूंढने के लिये। ऐसा न करें तो उनको पुरुषों की अधीनता रूपी सुख कैसे मिले?

इस बड़े घर वाले समाज में स्त्रियों को १५ वर्ष की अवस्था से अन्तकाल तक दुःख झेलना पड़ताहै। क्यों? बिना अन्न-पानी के बिना कपड़े लत्ते के वे एक दिन भी नहीं जी सकतीं। भोजन वस्त्र का कोई न कोई देनेवाला उनको ज़रूर चाहिये। सो वे विवाह न करें तो भूखों मर जायं। भोजन वस्त्र का मालिक मर्द है, और वही जिसे चाहे हाथ उठा कर देता है। कहिए. इन सभ्य देशों में— स्वाधीनता की झूठी डींग हांकनेवाले समाज में स्त्रियों के लिये स्वाधीन प्रबन्ध क्यों नहीं होता ? अन्न, वस्त्र, मकान, जीवन यात्रा की सारी सामग्रियों के लिये स्त्रियों को पुरुष का मुंह क्यों ताकना पड़ता है? (मैं किसी इनेगिने धनी परिवार की बात नहीं कहता, बात हो रही है सारी स्त्री जाति और सारा पुरुष जाति के विषय में। किसी इक्के दुक्के की बात नहीं होती) अप्सरा की सी सुन्दरी स्त्रियां भी हवा पी कर नहीं जी सकतीं। जीवन व्यतीत करने के लिये उनको पुरुष के आधीन होना ही पड़ता है। और इस आधीनता के बन्धन में पड़ने के लिए पूर्वी देश की स्त्रियों को दुःख नहीं उठाना पड़ता। उनके मां-बाप ही उनका योग्य पात्रों से विवाह करवा देते हैं परन्तु यूरोप में बेचारियों की बड़ी दुर्गति होती है। अपने रोटीवाले के लिये—

अपने पति के लिए उन्हें बड़े बड़े दुःख झेलने पड़ते हैं। एक नवयौबना कन्या को इस विशाल संसार में अपना प्रेमी ढूंढ़ना पड़ता है। चाय पीने के न्योतों में, नाचों में, गिरजों में, जहां देखो वहीं बेचारी रोटी वाले की खोज में लगी रहती हैं। इतने नाच-रंग, दावत, जाफत, सब इसी एक मतलब से रची जाती हैं। स्वाधीनता के नाम से बेचारी कन्याओं को कैसी कैसी मुसीबतें उठानी होती हैं! कारलाइल नामक महाज्ञानी अंग्रेज़ का कथन है कि "स्वाधीनता है तो बड़ी अच्छी चीज़! परन्तु भूखों मरने के लिये स्वाधीनता कभी अच्छी नहीं होती।" यूरोप की कन्याओं की स्वाधीनता भी इसी सांचेकी ढली होती है।

बाजा बजाना, गाना, कालेज में पढ़ना, अधनंगी हो कर नाचना, कूदना यह सब वहां की सभ्यता की शिक्षा के अंग हैं। इनकी क्या आवश्यकता है? वही पुरानी बात विवाह? इन बेचारियों को हाव-भाव की भी शिक्षा सीखनी पड़ती है। हाव-भाव से मतलब, कोई पुरुष आवे तो उसका मन हर लेने के लिये उठना, बैठना, नज़ाकत दिखान, इत्यादि ही है। इन्हीं हाव-भावों, इन्हीं सभ्यता के अंगों को सीखने के लिए बेचारियों को अपनी माताओं से धमकियां घुड़कियां सुननी पड़ती हैं। जो ऐसा न करेगी, जो पुरुषों का मन अपनी चटक मटक से बहका न सकेगी तो आगे चलकर उसे खाना-कपड़ा कौन देगा? मां-बाप कब तक उसे पालेंगे? मर्द के लिये जैसे रोज़गार, नौकरी-चाकरी है, स्त्री के लिये उसी भांति मर्द की गुलामी

करना उसकी पत्नी बनना भी रोजगार या नौकरी है। जैसे बे-रोजगार मर्द, वैसे अनब्याही स्त्री। स्त्री पियानो उसी लिये बजाती है जिस लिये उसका भाई कोई पेशा सीखता है मतलब वही एक ही बात--हंड़िया की खुद बुद, दाल रोटी का मामला। फिर स्वाधीनता कहां रही?

ब्याही जाने के लिये, वा ब्याहने को अच्छे पुरुषों का मन मोह लेने के लिये, शिक्षाकाल में तो बेटियों को गाना, बजाना ठसक मसक, सभी बातें सीखने के लिए अपनी माताओं से ताड़ना खानी ही पड़ती है, परंतु यौवन में भी उनकी दुर्दशा बहुत बुरी तरह होने लगती है। रात दिन वह पुरुषों का मन मोहनेकी जुगत सोचा करती हैं। जो समय उनको धर्म चर्चा, सच्ची शिक्षा, गृहधर्म आदि में बिताना चाहिए, वह समय नाच में, रंग में, खेल में, कूद में, अपने हृदय को कलुषित करने में, खर्च होता है। किसी मर्द को अपना भर्त्ता बनाने के लिये उन्हें खुशामदी, भांड़, दिल्लगीबाज और नचैये गवैयों की श्रेणी में उतरना पड़ता है। है तो यह अवनति, पर लोग इसको उन्नति कहते हैं। फिर इन कामों के करने में नवयौवना कन्याओं को कैसे कैसे लालचों में, कैसी कैसी पाप चिन्ताओं में डूबी रहना पड़ता है, और बहुधा उनको सच मुच कैसी निर्लज्ज दशा में गिरना पड़ता है, उसका कहना ही क्या है? क्या इस भांति स्वयम्बरा होने से हमारे देश की विवाह-पद्धति बुरी है?

और विवाह की इच्छा रखने वाले सभ्य पुरुषों की बात

क्या कहें ? वे जैसा चाहते हैं उनको प्रसन्न करने के लिए स्त्रियों को वैसा ही करना पड़ता है। उन्हीं के लिए बेचारी सरला सीधी सादी पवित्र कुल कन्याओं को इतने दुःख झेलने पड़ते हैं। तिस पर भी सभ्यताभिमानी पुरुष महाराज स्त्रियों का कितना आदर करते हैं, इस बात को अंगरेजी कवि किपलिंग हीने एक जगह साफ कह दियाहै। एक स्त्री ने कहा, "तुम चुरुट मत पिया करो।" चुरुट पीने से तुम्हारी देह से बड़ी बुरी वास आती है। चुरुट पियोगे तो मैं तुम से विवाह नहीं करूंगी। पुरुष महाराज सोच रहे हैं. नहीं, नहीं, स्त्री के लिए मैं अपने आराम की चीज़ नहीं छोड़ूंगा। स्त्रियां तो एक नहीं मन मानी मिल जायंगी,—चुरुट तो चुरुट ही है। मतलब यह, कि पुरुष अपने स्वार्थ के सामने स्त्री का मूल्य एक चुरुट से भी तुच्छ समझता है। यह हमारे असभ्य भारतवर्ष की बात नहीं है। इस बात से एक महासुसभ्य समाज के महाप्रतिष्ठित कवि ने अपने समाच का चित्र दिखाया है।

जब भारतवर्ष की नारी को पति, घर और सुख के सभी साधन आप से आप घर बैठे मिल जाते हैं, तब क्या उसकी दशा अपनी पश्चिमी बहिनों से श्रेष्ठ नहीं है ?

पश्चिमी नारी को इतना करने पर भी पति नहीं मिलता। बहुत से पुरुष अपना विवाह ही नहीं करते। वे भौरों की भांति पुष्पसे पुष्पान्तर में उड़ उड़ कर मधु चाखा करतेहैं। अहा, कैसा अच्छा सम्मान है इन सभ्य परुषों का अपनी स्त्रियों के लिए !

जब बहुत से पुरुष विवाह नहीं करते तो बहुत सी स्त्रियां अनब्याही रह जाती हैं। उनका क्या होता है? वे जन्म भर 'हाय ब्याह हाय ब्याह,' करती करती बुढ़िया होजातीं हैं, उनके मन का अरमान उनके साथ साथ कबर में गड़ जाता है। और पेट भरने के लिये उनको दफ्तरों में लिखना पढ़ना, स्कूलों में पढ़ाना, दूकान में दर्ज़ी के कपड़े सीना, बाजा सिखाना, धनी परिवारों के लड़कों को पालना इत्यादि काम करके पेट भरना पड़ता है। एक एक डाकखाने में स्त्रियां खिड़कियों के सामने अपनी नौकरियों पर दिन दिन भर खड़ी रहतीं हैं। बहुत स्त्रियां अपने घरों में किराये-दार बसा लेतीं हैं। और उनके लिए भोजन बनाती हैं, उनकी कोठरियों की झाड़ू बुहारी करती हैं, उनके बिछौने बिछाती हैं, उनके जूतों में स्याही लगाती हैं, और इसी भांति किरायेदारों की दासी बन कर जन्म काटतीं हैं। ये स्त्रियां बहुधा लिखी पढ़ी और भले घरों की होतीं हैं, तब भी इनको पेट के लिए नीच वृत्तियां करनी पड़ती हैं। और यूरोप वाले, जो स्त्रियों का इतना सम्मान करते हैं, अपनी बहिनों, बेटियों, भतीजियों से इस तरह काले आदमियों की गुलामीं कराना बुरा नहीं समझते, पर आप उनको खाने के लिए एक टुकड़ा भी नहीं देते। इन बेचारी असाहाया नारियों को देखकर विलायत में गये हुए हिन्दुस्तानी मनमें सोचते हैं क्या इनके भाई, बाप, चचा या कोई आत्मीय नहीं है जो बेचारियां अकेली ज्यों त्यों करके अपने पेट पालने को छोड़ दी जाती हैं। जहां स्त्रियों की इतनी इज्जत की डींग सुनते

थे, क्या इनके आत्मीयों को इनकी इज़्ज़त की परवाह ही नहीं है? इस बनियेशाही में जहां लोग परस्पर लूटने ही को मिला करते हैं, क्या इस देश में स्त्रियों का स्त्रीत्व ही मिट जायगा ?

कुछ स्त्रियां जिनके पास धन तो है, अपने धन के बलसे पुरुष पा जाती हैं। उनका सम्मान तो ऐसा ही वैसा होता है, उनके लिये किसे क्या पड़ी है, परन्तु उनके धन की लालच से शहद पर मक्खियों की भांति पुरुष उनके पीछे लगे रहते हैं। धन के लालच से विवाह यूरोप में एक साधारण बात है।

कहने को लोग मुंह अपने आप लाख मियां मिट्ठू बना करें, पर सभ्य देश की बात ऐसी ही है। स्त्रियों के सामने दिखावटी सम्मान और झुक झुक कर सलाम एक प्रकार की कसरत या जिमनास्टिक ही है। हम लोगों को तो देख देख कर हंसी आती है।

विवाहित जीवन स्त्री को बुरा नहीं लगता। जब विवाह में इतनी कठिनाइयां होने लगीं, तभी पढ़ी लिखी स्त्रियां कोई डाक्टर होती हैं, कोई वकालत सीखती हैं, कोई सम्पादक बनती हैं। परन्तु जब इन पेशों में मर्द ही भूखों मरते हैं तब स्त्रियां भी जो मर्दों के कामों में हिस्सा बटाने लगेंगी तो उनको क्या मिलेगा ? वे बेबस होकर ही ये सब काम करती हैं। नहीं तो स्त्रियों का स्त्रीत्व गृहस्थी ही में फलीभूत होसकता है। विवाह के बाज़ार में कोई उनको नहीं पूछता, पारिवारिक सुखकी उनको आशा नही

रहती, तभी बेचारियां दूसरे पेशे करती ढूंढ़ने लगती हैं। और उन्हें धनोपार्जनके लिये लोभ, ईर्षा, चालाकी आदि से सहायता लेनी पड़ती है, जिनके फंदे में पड़ कर स्त्रियां का स्त्रीत्व, उनकी कोमल वृत्तियां धीरे धीरे नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं। यदि कोई स्त्री इन सब झगड़ों से अलग रहने के कारण कुछ अज्ञानता ही में रहती हो, तो ऐसी अज्ञानता भी अच्छी है। ऐसी अज्ञानता उसको संसार की कुटिलता और दुष्टता से तो बचा रखती है। परन्तु दिन दिन आगे बढ़ने वाली वह सभ्यता बेचारी स्त्री को भी घसीट कर दूकानदारी में खींच लाती है, स्त्री को भी झूठ बोलना धोखा देना, मोल भाव और लेन देन करना पड़ता है; उसको भी सस्ते में लेने और महंगे भाव देने की नीति सीखनी पड़ती है। इस भांति की स्त्री-स्वाधीनता दो धार की छुरी का काम करती है। या यों कहिये कि छुरी के घाव पर निमक छिड़कती रहती है; क्योंकि पहिले तो स्वाधीनता स्त्रियों का स्त्रीत्व-उनकी गृहस्थी का राज पाट छीन लेती है; दूसरे ऊपर से उनके सिर जीवका की चिन्ता भी मढ़ देती है। इतने ही से यूरोप के जेन्टिलमैनों के स्त्री सम्मान का दृष्टांत मिल जाता है।

ये तो अनब्याहियों की बात हो चुकी। विवाहिताओं की दशा भी अच्छी नहीं होती। उनके पुरुष उनसे सच्चे प्रेम का बर्ताव नहीं रखते और एक फरासीसी लेखक ने साफ साफ लिख दिया है कि पुरुषों के दो तरह की स्त्रियां होती हैं, एक विवाहिता और दूसरे साधारणतः दो, एक, वा और भी अधिक

रक्षिता। वहां के लोग खुल्लम खुल्ला तो एकही विवाह करते हैं, परन्तु अधिकांश लोग बहुपत्नीक होते हैं, चाहे वह पत्नी धर्म पत्नी न भी हो।

उच्च और मध्यम श्रेणी की शिक्षा की बात जो सुनी जाती है वह बिलकुल ऊपरी शिक्षा होती है. गहरी शिक्षा नहीं कही जासकतीं। कालेजों में जाने वाली स्त्रियां भी कुछ गम्भीरता या बुद्धि की बातें नही सीखतीं। किसी के मन की गहराई जांचनी हो तो उससे बात चीत करो। इन शिक्षाभिमानी स्त्रियों से बात करने में तबियत ऊबने लगती है। सिवाय पराई चर्चा के और कुछ उनको नहीं सुहाता। घर पर पढ़ती भी हैं तो नाविल। हिन्दुस्तानी तो शक्की या 'सुपरस्टिशस' के नाम से बदनाम हैं ही. परन्तु ये पढ़ी लिखी सभ्य स्त्रियां भी पक्की सुपरस्टिशस' होती हैं। इसलिये पाखंडियों को इन लोगों में तिजारत करने का अच्छा अवसर मिलता है। अमेरिका सायन्स या विज्ञान की भूमि है, परंतु वहां भी झूठी बातों की चर्चा यानी 'सुपर-स्टिशन' पायी जाती हैं। हाथ देख कर भला बुरा बताने वाले या जादूवाले सब शहरों में उतनी ही अधिकता से पाये जाते हैं जितनी कि नाऊ या धोबी। प्रेम की चुटकियों, यानी यन्त्र मन्त्र गंडे तावीज का व्यापार भी बड़े जोर से चलता रहता है। फिर उनकी शिक्षा को शिक्षा कैसे कहें? और अपने देश की स्त्रियों को जो सच्ची शिक्षा—गृहस्थी की शिक्षा दी जाती है उसे भी कैसे सत्य न मानें? फिर कैसे कहें कि वहां की स्त्रियों

की दशा यहां वालियों से उन्नत है। दोनों बहुत सी बातों में एक ही सी देख पड़ती हैं।

ऊपर हम जो कुछ कह आये हैं, वह सब उच्च और मध्यम श्रेणी वालियों की बात है। अब तनिक नीच श्रेणी वा मज़दूर जाति की नारियों की बात सुनिए। किसी देश की सच्ची दशा देखनी हो तो निरे महलों ही की सैर मत कीजिये गली कूचों की पर्णकुटियों का भी दर्शन करना ज़रूरी है। जहां के कमकर लोग प्रसन्न हैं। वहां की महा-जाति भी बहुत प्रसन्न होगी। इस से कमकर जातियों ही के अवलोकन से महा-जाति की सच्ची दशा जान पड़ेगी। पश्चिम की कमकर जाति की दशा तो पहिले देखनी चाहिये। वहां की स्त्रियों को भयकर कठिनाई और विपत्ति से युद्ध करना पड़ता है। कमकर जाति की स्त्रियां तो मानो मोल ली हुई गुलाम हैं। छोटी छोटी लड़कियों को कारखानों में अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करना पड़ता है। माताएं भी अपने बच्चों को छोड़कर कारखानों में काम करती हैं। अब जरमनी में दान सभा बनी है जिससे बच्चा जनने के बाद माताओं को छः हफ़्ते तक खाने को मिलता है, परन्तु इस समय के पीछे वे फिर कारखानों में घुसती हैं, नहीं तो भूखों मर जांय। कहीं कहीं बच्चों के रहने के लिये कारखानों में एक जगह बनी रहती है, जहां माताएं काम से छुट्टी पाते ही जाकर उनक दूध पिला आती हैं। परन्तु यह सुख सब जगह नहीं मिलता

सब जगह दूध पीते बच्चे तक काम के समय मां के पास नहीं ठहरने पाते। फल इसका यह होता है कि अकेले जर्मनी में बीस लाख बच्चों में से चार लाख जन्म लेने के पहिले ही वर्ष में मर जाते हैं। इसी का नाम है सभ्यता! इसी सभ्यता का दम भरनेवाला यूरोप है! स्त्रियों को सवेरे से शाम तक कारखानों में काम करना पड़ता है। तब वह घर जाकर फिर रात में काम करती हैं। अमेरिका के बड़े बड़े कारखानों में जहां भद्र घर के मनुष्य रेशम, साबुन इत्र, फीते आदि मोल लेने जाते हैं,—वहां युवती स्त्रियों का दिन भर बारह चौदह घंटे काम करने पर जो मज़दूरी अमेरिका के सिक्के में मिलती है हिन्दुस्तानी सिक्कों में उसका मूल्य डेढ़ आने के पैसों से ज्यादा नहीं होता। चौदह घंटे की मेहनत से छः पैसे की आमदनी युवा स्त्रियों की हुई! दिन भर उनको खड़ी रहना पड़ता है, और इससे उनका शरीर भी जल्दी टूट जाता है। किन्तु यूरोप के बांके छैले जेन्टिलमैन, जो अपनी स्त्रियों का इतना अधिक सम्मान करते हैं, कभी अपनी इन गरीब बहिनों की ओर ताकते तक नहीं। अकेले युनाइटेड स्टेट्स ही में ऐसी ६० लाख अबलाएँ हैं जिनको दिन भर पसीने बहाने पर दो आने से ज्यादा नहीं मिलता। और उनसे परिश्रम इतना लिया जाता है कि कोई साधारण धोबी अपने गधे से भी इतना परिश्रम नहीं लेता होगा। न्यूयार्क में कुछ परदेशी परिवार रहते हैं जिनकी स्त्रियां

बड़ी रात बीतने तक नकली फूल, जालियां, टोपी, आदि बना कर एक आना रोज कमा लेती हैं। वे रहती ऐसी कोठरियों में हैं जहां सूअर भी रहने से घृणा मानेंगे।

अब और ज्यादा लिख कर क्या होगा? जो लोग विलायती सभी बातों को अच्छा बताते हैं, वे विचारशील मनुष्य नहीं। यदि वे कुछ विचार करके दोनों देशोंकी दशाको मिलावेंगे तो उनको कहना ही पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के लिये पुरानी हिन्दुस्तानी शिक्षा ही लाभकारी है। नई रोशनी के सभ्यताभिमानी जो हमारी स्त्रियों की दशा गिरी हुई समझ कर उसे विलायती ढांचे में डालना चाहते हैं, वे देश के शुभचिन्तक नहीं हैं।

(गृहलक्ष्मी)

—:०:—

राष्ट्र की सम्पत्ति

'जिनको अधिक दिया जाता है, उनसे अधिक ही की आशा भी की जाती है' ऐडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" में अर्थ शास्त्र विषयक सिद्धान्तों की व्याख्या की है। परंतु वास्तव में राष्ट्रों की मुख्य सम्पत्ति या धन चांदी और सोना अन्न और पशु नहीं है। हम इस लेख में बतलावेंगे कि मानव जाति और राष्ट्रों की वास्तविक सम्पत्ति क्या है और संसार की बुराइयों को नष्ट करने के

लिए उसको कैसे काम में लाना चाहिये। दुनियां की स्थायी सम्पत्ति स्त्रियों और पुरुषों की बुद्धि और आचरण है। ज्ञान और चरित्र रूपी पूंजी सारे सुखों का पथप्रदर्शक है। मनुष्य समाज के लिये शुभचिन्तकों को इस मूल धन के उचित उपयोग पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग पर ही जातिका भविष्य निर्भर है। हमारा भोजन और वस्त्र, हमारी औषधि और चिकित्सा, हमारे सुख और प्राकृत-सुख-साधन, हमारी सुन्दर सामाजिक संस्थाएं और हमारी सभ्यता की विस्मयोत्पादक विशाल रचनाएं, हमारी भूतकाल की कीर्तियां. वर्तमान की कोशिशों और भविष्य के आदर्श इसी के सदुपयोग पर अवलम्बित है। मनुष्यों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति भौतिक पदार्थों से होती है और ये भौतिक पदार्थ लोगों के आन्तरिक उत्कर्ष की वृद्धि और उसके संरक्षण या उचित उपयोग द्वारा उत्पन्न होते हैं। एफ्रिका की असभ्य जातियां प्रकृति के महान विभवों में रहते हुए भी अपनी मानसिक निर्बलता के कारण भूखों मरती हैं किन्तु सभ्य जातियां अपने विद्या और चरित्र बलके कारण स्काट लैंड के दलदलों और कनाडा के ऊजड़ स्थानों में बड़े चैन से जीवन व्यतीत करतीं हैं। जितनाही लोग बुद्धि और आचरणका अधिक सदुपयोग करते हैं। उतनेही अधिक वे दरिद्रता, मूर्खता और और रोग से मुक्त होते है।

अन्तरात्मा वाह्य जगत पर प्रभुत्व प्राप्त करती है, अदृष्टि

दृष्टि से प्रबलतर है, मन और अंतःकरण द्वारा मनुष्य की शारीरिक आवश्यकतायें भी अधिकतर सम्पादित होती हैं।

आइए, ज़रा देखें! भारतवर्ष के लोग अपनी बुद्धि का उस दुर्लभ और दुष्प्राप्य शक्ति रूपी बुद्धि का जो किसी जाति के सामाजिक शरीर को रचकर खड़ा कर देती है और जो प्रकृति के गुप्त भेदों को उसके कृपण हाथों से छीन कर मानव जीवन को सौन्दर्य और गौरव प्रदान करती है- कैसा दुरुपयोग कर रहे हैं? यह दुरुपयोग तीन प्रकार से किया जा रहाहैं (१) दुराचार द्वारा धन कमाने में (२) मिथ्या दर्शनशास्त्र के प्रचार में (३) और मनोरञ्जन में।

(१) वर्तमान भारत में ऐसे लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या है जो अपनी मानसिक शक्तियों पर अत्याचार कर रहे हैं और जो बुद्धि ऐसे पवित्र उपहार का घृणित स्वार्थ की पूर्ति और धनकी प्राप्ति के लिए बलिदान करते हैं। पुरानी चाल के पण्डित इस दोष से किसी क़दर मुक्त हैं इसका कारण यह है कि बनारस और नदिया के पण्डित धन कमाने के लिये ही विद्यार्थियों को शिक्षा नहीं देते। यह बड़ी चिन्ता की बात है कि हमारे बीच में पढ़े लिखे किराये के टट्टुओं की एक ऐसी बड़ी तादाद बढ़ रही है जो अपने भाइयों पर मुसीबत और बरबादी लाकर अपनी जीविका कमाते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष की विद्या और बुद्धि देशवासियों के लिये सुखकारक और

बलदायक न होकर उलटा उनका हनन कर रही है। यह बड़े शोक की बातहै कि दुनिया के सब मुल्कों में बुद्धि धन के हाथ कराव २ हमेशा से बिकती आई है विद्या और बुद्धि का इस प्रकार बेचना उतनाही निन्दनीय है जितना कि एक खूबसूरत औरत का अपनी खूबसूरती की तिजारत करना। बुद्धि को समाज और देशकी उन्नति करने में लगाना चाहिये क्योंकि यह ऐसा ताकतवर और जबरदस्त हथियार है कि यदि किसी ने निज के स्वार्थों और मन्तव्यों के सम्पादन करने में इसका दुरुपयोग किया तो वह समाजको चकना चूर करके व्यक्तियों में सिर फुटव्वल करवा देता है और शताब्दियों को सामाजिक उन्नति को नष्ट करदेता है। बुद्धि बलधारी पुरुषों को चाहिये कि वे अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कदापि न होने दें क्योंकि बुद्धि के उपयोग या दुरुपयोग से ही उनका जीवन संसार के लिये आशीर्वाद वा शाप के तुल्य हो सकता है। वर्तमान भारत दौलत के लिये दीवाना होरहा है और इस असर से विद्वान भी अपने आपको नहीं बचा सके हैं। इनको उचित तो यह था कि सत्य और न्याय के प्रचार में अपने आपको न्योछावर कर देते किन्तु इसके विरुद्ध बहुतों ने अपने को असत्य और छल की फौज में भरती हो जाने दिया है। इन वैतनिक सेवकों के बिना धनी लोग एक दैत्यका बल रखते हुए भी किसी को हानि नहीं पहुंचा सकते। भारत के बुद्धिमान विद्वान् धनवानों और अभिमानियों के द्वार पर रोटी के टुकड़े मांगने में तत्पर हैं और गरीब और निर्बल पीसे जा रहे हैं।

(२) भारतवर्ष में तत्व ज्ञान वा ब्रह्मज्ञान मूर्खता का सदैव से सहायक रहा है। अर्थात ज्ञान के नाम से बहुत कुछ अज्ञान का प्रचार कियागया है। प्रथम तो भारतवर्षीय विद्वानों की अधिकतर मानसिक शक्ति धनोपार्जन रूपी आखेट में खर्च होती है और बाकी जो बचती है उसे शुष्क ज्ञान बाद हड़प करजाता है। शुष्क ज्ञानवाद भारत के लिए एक शाप सिद्ध हुआ है। इसने इस देशके इतिहास के रूप को बिगाड़ कर उसको सत्यानाश करदिया। इस मिथ्या ज्ञान के फेर में पड़कर बड़े २ आदमी बकवादी और बातूनी होगये और वे निष्प्रयोजन और निष्फल गवेषणाओं और प्रयत्नों में शताब्दियों से अपनी बुद्धि को नष्ट कर रहे हैं। इस के कारण जल्प और वितण्डा ने एक शास्त्र की पदवी प्राप्त करली और निःसार और खोखली कल्पनाओं को तत्वज्ञान का स्थान मिल गया है। भारतवर्ष के बड़े २ पण्डित सैकड़ों वर्ष से एक ऐसे अंधकूप में पड़े हुए हैं कि उन्हें नितान्त ऊटपटांग बातें भी सच्चाइयां प्रतीत होती हैं। इस झूठ ज्ञान की बदौलत हमारे लिए अन्धकार प्रकाश हो गया और हम शब्द जाल रूपी भूलभुलैयां को बड़े २ जटिल प्रश्नों का अन्तिम निर्णय समझ बैठे। हमारी विचार शक्ति कितनी नष्ट हुई है इस का हिसाब हम नहीं लगा सकते। इसने कैसी २ महान् आत्माओं को दासत्व की शृंखला में जकड़ कर बरबाद करदिया। जिस प्रकार कोई देश द्रोही शत्रु से मिलकर अपने ही देश की हार का कारण होता है उसी तरह भारतवर्षीय

ब्रह्म-ज्ञान, सच्चाई का दिली दुश्मन अपने असली रूप को सदैव वाग्जाल में छिपाते हुए हमारी अवनति का कारण हुआ। इस देश में जो विद्वान् जितना अधिक अहंकारी ढोंगी, बातूनी और हठी हुआ वह उतनाही अधिक प्रमाणिक समझा गया। इन ब्रह्मज्ञानियों की ऊलजलूल शब्द रचनाओं ने सच्चे और पुष्ट विचारों का स्थान छीन लिया। भारतवर्ष ने इस ब्रह्मविद्या रूपी मनमोहनी स्त्री के प्रेम में पड़कर बहुत नुकसान उठाया है। बुद्धदेव ने हिन्दुओं को दार्शनिक मतभेदों से दूर रहने का उपदेश दिया था परन्तु इस महापुरुष का कहना निष्फल हुआ और उसके उपदेशों का उपहास उड़ाया गया।

जिस तरह एक सांप की जबरदस्त आकर्षण शक्ति से एक चिड़िया उसके मुंह में खिचजाती है उसी तरह हिन्दुओं की बुद्धि इस ब्रह्मज्ञान की ओर खिंच जाती है। इसने हिन्दुओं की कलाओं और विद्याओं की जड़ काटदी है। आओ अब हम इसका अन्त करें। इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य-जाति को बाल्यावस्था मे हुई थी, परन्तु शोक इस बात का है कि हिन्दोस्तान बालिग होकर भी लड़कपन के खेलों से अबतक खेलरहा है। यदि ऐसी अवस्था में उसे पश्चिम का शिष्य बनना पड़े तो आश्चर्य ही क्या है!

यह कैसे दुःख की बात है कि वे लोग भी, जो जाति का भला करना चाहते हैं, अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं और रोटी की जगह पत्थर देरहे हैं। एक ओर तो दुर्भिक्ष

महामारी और मलेरिया देश का सत्यानाश कर रहे हैं और दूसरी ओर हमारे ब्रह्मज्ञानी महात्मा ब्रह्मविद्याके रहस्यों और नित्यानित्य पदार्थों की खोज में लगे हुए हैं। देश भर में ऐसा एक भी कला-कौशल का विद्यालय, विज्ञानालय या पुस्तकालय नहीं है जिसे हम आदर्श कह सकें। पदार्थविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति इस देश के शिक्षित समुदाय के लिये भयावनी चीज़ है।

मेरे मित्रों! जहां तुम अपने शास्त्रों की निष्प्रयोजनीय बातों को पढ़कर आनन्द में मग्न हो जाते हो और उनकी प्रशँसा में मैक्सम्यूलर और शोपनहार के मत को उद्धृत करने लगते हो वहां दुनिया वैज्ञानिक आविष्कारों, आर्थिक सुधारों और राजनीति के आन्दोलनों में आगे बढ़ती चली जा रही है। उपनिषद् चिल्ला चिल्ला कर कह रहे हैं कि उस तत्व को जानो जिसके ज्ञानसे सब कुछ जान जाता है। हमारी समझ में भारतवर्ष के मध्यकालीन दार्शनिकों की यह मिथ्या कल्पनाही यहां के शुष्क मायावाद और आत्मवाद आदि निःसारवादों की जड़ है। भारतवर्ष की पुस्तकें असम्भव प्रलापों, विलक्षण कल्पनाओं और अस्तव्यस्त तर्कनाओं से परिपूर्ण हैं। शोक है कि हम अब तक इस बात को नहीं समझते। हम अब भी पुरानी लकीर को पीट रहे हैं और पश्चिमीय साहित्य का अनुवाद करने के स्थान में हम पुरानी पुस्तकों को ही बार २ सम्पादित करते जाते हैं।

यदि फ्रेडरिक हैरीसन, विरयूकज़, बेबल, अनाटोल फ्रांस,

ह्वें, हैकल, गिडिङ्गज़ और मार्शल आदि विद्वान डन्सस्कोट्स और अक्वनीस आदि पर ग्रन्थोंकी रचना करते अथवा पेन्टाटियुश के कानून और बेयोवल्फ की कविता पर टीका करते तो आज योरप की क्या हालत होती ? उनकी समझ में हमारे पंडितों और शिक्षित लोगों में प्राचीन काल की निष्फल बातों में लगे रहने की झक सी हो गई है। उन्नति विचारों के रखनेवाले कुछ आदमी मिलकर एक विद्यालय स्थापित करते हैं और उसका उद्देश्य व्याकरण और छहों शास्त्रों द्वारा वेद की शिक्षा देना होताहै। बुद्धि प्राप्त करने का यह कैसा झूठा रास्ता है। यह तो ऐसा ही हुआ कि एक यात्री-दल जल प्राप्त करने के लिये सारे रेगिस्तान को पार कर डेडसी (Dead sea) के किनारे पहुंचे। भारतीय युवको ! तुम अपनी ब्रह्मविद्या की सड़ी गली पुस्तकों से बुद्धि प्राप्त करने की आशा मत रखो। उनमें शब्द-जाल के सिवा और कुछ नहीं है। यदि तुम जीवन के महत्व और उसके प्रश्नों को समझना चाहते हो तो रूस और वाल्टर, प्लेटो और परिस्टाटिल, हैकल और स्पेन्सर, मार्क्स और टाल्सटाय, रस्किन और काम्ट और अन्य पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थ पढ़ो। तुम आजसे तीन हज़ार वर्ष पूर्व के ज़माने में नहीं रहते हो। तुम देहाती छकड़ों में सवार नहीं होते हो, तुम्हें हाथ की लिखी हुई पुस्तकें अब पढ़नी नहीं पड़तीहैं। तब फिरि क्यों तुम अपने अध्ययन में इतने पिछड़े हो कि तुम्हें उसी पुरानी लकीर को पीटना पड़ता है जो तुम्हारे बुद्धिमान पूर्वज शताब्दियों के पहले खींच गये हैं।

तुम्हारे पूर्व्वज बुद्धिमान थे और अपने समय के लिये पूर्णतया उपयुक्त थे परन्तु वर्तमान काल के लिये और ही प्रकार के बुद्धिमान आदमियों की आवश्यकता है। किसी समय के लोग बुद्धि के ठेकेदार नहीं हो सकते। तुम भविष्यत् काल के योग्य बनने के लिये बहुत दूर के भूतकाल की ओर क्यों देखते हो ? ऐसा करना तो अवर्णनीय मूर्खता है। ब्रह्मविद्या को, व्यर्थ समय गवानेवालों और मनमाने अर्थ लगाने वालों के लिये छोड़ दो और तुम अर्थशास्त्र और राजनीति के अध्ययन में लिप्त हो जाओ। कल्पित बातों के प्रेमियों ही को ईश्वर-विद्या के सिद्धान्तो पर लड़ने झगड़ने दो और उन्हीं को ईश्वर ज्ञान और दर्शनों के अन्य गूढ़ तत्वों पर सर-फुड़ौवल करने दो। हमारे सामने इससे कहीं अच्छा काम करने के लिये मौजूद है। जीवन काल थोड़ा है और काम बहुत से करने हैं। हमारे पास धार्मिक रूढ़ियों और सिद्धान्तों के व्यर्थ झगड़ों में खर्च करने के लिये समय नहीं है हमारी दृष्टि में ये सब बातें एक ही सी हैं। हमें इस बात की आवश्यकता नहीं कि हम उनमें किसी प्रकार का अन्तर ढूंढ़ते फिरें। ज़रा पाश्चात्य देशों के उन बड़े २ विद्वानों की ओर देखो जो सामाजिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में गण्य-मान समझे जाते हैं, जो आधुनिक सभ्यता के जन्मदाता हैं जिसके वैज्ञानिक खोज, सामाजिक समानता, स्वतंत्रता सहिष्णुता, तर्क (Rationalism) और भ्रातृभाव आदि मूल सिद्धान्त हैं। बेकन ने कहा है "इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान बनाता है।" उसके ये शब्द ही

बुद्धिमत्ता से भरे हुए हैं। समाज शास्त्र ही बुद्धि का दाता है, ब्रह्म-ज्ञान अथवा ईश्वर-विद्या नहीं। वर्तमान काल में समाज शास्त्र ही की दो प्रसिद्ध शाखायें अर्थशास्त्र-और राजनीति भारत के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगी।

(३) भारतीय शिक्षित लोगों की बुद्धि जिस तीसरी बात में खर्च होती है वह कल्पित साहित्य की रचना है: ऐसी कविता और उपन्यास की रचना में जिसमें, पुराने समय के प्रेम अथवा सामाजिक रीति का चित्र खींचा जाता है, हमारे कितने ही बङ्गाल, अवध, गुजरात और अन्य प्रान्तों के वर्तमान प्रतिभाशाली निवासी लिप्त हैं। इस प्रकार का साहित्य बहुत ही अच्छा और शिक्षाप्रद है परन्तु भारत के पास इस प्रकार के साहित्य का इस समय इतना बड़ा खज़ाना है कि उसे अभी उनकी बहुत दिनों तक कुछ भी आवश्यकता नहीं हैं। मनोरञ्जक बातों की रचना उस समयतक रुकना चाहिये जब तक हम विज्ञान और समाज शास्त्र की कमी की पूर्ति न करलें। भारत की बुद्धि का इस प्रकार अभी अपव्यय न होना चाहिये क्योंकि हमारे उपयोगी साहित्य का प्रत्येक विभाग बेतरह दरिद्रहै। शिक्षा प्रदायिनी बातों के बाद मनोरञ्जन की बातों की रचना होनी चाहिए। आवश्यक बातों के पश्चात् आमोद प्रमोदकारी बातों की रचना उचित है।

भारत अपने राष्ट्रीय धन की दूसरी शक्ति अर्थात् अपनी नैतिक शक्ति को किस प्रकार खर्च करता है? वह उसका वैसे ही

अपव्यय करता है जैसे वह अपनी मानसिक शक्ति का अपव्यय करता है। एकान्त में बैठकर विचार की तरङ्गों में गोते खाना भारतीय सपूतों का समय काटने का एक प्रिय ढङ्ग है। वे तुच्छ स्वार्थपूर्ण इच्छाओं और विचारों से तो परे हो जाते हैं सही परन्तु विचार और अकर्मण्यता के गहरे गढ़हे में गिर पड़ते हैं। वे त्याग का सिद्धांत सब बातों में ठूसते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के सैकडों सच्चे और शुद्ध हृदयधारी युवा पुरुष और स्त्रियां हैं जिनके पास तक लोभ और दुनियादारी नहीं फटकती, परन्तु वे किसी भी प्रशंसनीय काम को नहीं कर सकते। ब्रह्म का साक्षात् प्राप्त करने के लिए वे पर्वतों पर आश्रम बना कर निवास करते हैं। अपने साथियों के साथ जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के बदले वे नाना प्रकार के आसनों और अन्य रहस्यपूर्ण बातों द्वारा उच्च पद प्राप्त करने की चेष्टा करते है। इस प्रकार के कितने ही संन्यासी यश अपयश, भूख प्यास धन और प्रभुत्व की कुछ भी परवाह नहीं करते। निस्सन्देह उन्हों ने त्याग के बहुत ही उच्च पद को प्राप्त कर लिया है, परन्तु शोक है उनके इस उच्चपद की प्राप्ति से उनके भाइयों का कुछ भी भला नहीं होता क्योंकि वे व्यावहारिक जीवन के नियमों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। वेदान्त सूत्र, उपनिषद् और "ओम्" शब्द का भजन ही उनकी जमा पूंजी है। उन की समझ है "ओम्" शब्द ही संसार का सारा इतिहास और विज्ञान है। "ओम्" शब्द ही उस मानसिक स्तब्धता का कारण प्रतीत होता है जो 'आध्यात्मिकता' द्वारा भारतवर्ष में उत्पन्न होगई है।

जब किसी संन्यासी को कुछ काम नहीं होता तब वह 'ओम्' शब्द की शरण लेता है। इस प्रकार के उत्साही परन्तु गुमराह मनुष्य और कर ही क्या सकते हैं ? उनकी जानकारी बहुत ही कम होती है। सामाजिक उद्धार नहीं, किन्तु व्यक्तिगत उद्धार ही उनका उद्देश्य है। रही राजनीति, उसे तो वे जानते ही नहीं। राजनीति का सम्बन्ध कर, चुङ्गी का भावपत्र (Tariff). श्रेणियों के झगड़े, पद और प्रभुत्व आदि सब सांसारिक बातों से है जिनके चक्कर में सन्यासी पड़ना नहीं चहता। मैं एक बड़े विद्वान् ग्रेजुएट को जानता हूं। वह त्याग-व्रत धारण करके हिमालय पर तीन वर्ष तक यह समझ कर उपनिषदें पढ़ता रहा कि संसार का सारा ज्ञान उन्हीं में भरा हुआ है। तत्पश्चात् वह समझता था कि मुझे इस अध्ययन से पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया है और अब मैं दूसरों को ब्रह्म विद्या की शिक्षा दे सकता हूं। इस उदाहरण से स्पष्टतया पता लगता है कि भारतवर्ष की कितनी नैतिक शक्ति नष्ट हो रही है। देश में त्याग का जो वर्तमान आदर्श है वह बहुत ही दूषित है। जिज्ञासु के सामने एक झूठा आदर्श रखा जाता है। सांसारिक चीजें समझ कर इतिहास और विज्ञान की बुराई की जाती है। 'आध्यात्मिक' नाम का ज्ञान-जिसमें मुक्ति और 'ओम्' शब्द के रटने की शिक्षा के सिवाय और कुछ नहीं है 'सांसारिक' कलाओं और विज्ञान से अच्छा समझा जाता है। इस प्रकार यह त्याग भारत का कुछ उपकार नहीं करता—उपकार तो दूर रहा—उलटा वह कुपथ में डालता और उसे शक्तिहीन करता है।

" समाधि " अथवा अचेत होजाना आध्यात्मिक उन्नति का अन्त समझा जाता है।

कितने आश्चर्य की बात है कि अचेत होजाने की योग्यता बुद्धिमत्ता का चिह्न समझा जाय। यदि किसी व्यक्ति में भावों का प्राबल्य है और बुद्धि की कमी हो तो उसका बेहोश हो जाना बड़ा ही सहज है। यही कारण है कि स्त्रियां तनिक तनिक बातों में बेहोश होजाया करती हैं। परन्तु भारत में " समाधि " योगका आठवां दर्जा मना जाता है और केवल परमहंस लोग ही इस पद को प्राप्त कर सकते हैं। धन्य है हम लोगों के भाग्य! कृत्रिम उपायों द्वारा एक अप्राकृतिक और अस्वाभाविक अवस्था की प्राप्ति को ज्ञान का चिह्न समझने की मूर्खता भारतीय दार्शनिकों ही के लिए विशेष रूप से सुरक्षित थी। कोई आश्चर्य नहीं यदि पुस्तकें और रसायन-शालायें बुरी समझी जाती हों क्योंकि किसी आदमी को अचैतन्यता प्राप्त करने के लिये किसी विद्या की आवश्यकता नहीं। वाह! वाह! पूर्णज्ञान का क्या आदर्श है।

अमूल्य नैतिक शक्ति के अपव्यय होने का एक ढङ्ग भावपूर्ण उपासना भी है। कितने ही मत ऐसे हैं जिनके अनुयायी राम, कृष्ण और अन्य देवताओं की उपासना करते हैं। भक्त लोग बाजा बजाते हुए भजन गाते हैं और इस प्रकार अपने भाव-वेग को बहुत ऊंचा उठा ले जाते हैं। वे प्रभु का नाम लेते लेते प्रेम से रोने और नाचने लगते हैं। वे सारी सांसारिक चिन्ताओं और कर्तव्यों को भूल जाते हैं। आत्मा की यह उन्नति नैतिक बल की सूचक है

क्योंकि जो मनुष्य किसी भी विचार के बल से अपनी अत्मा को ऊंचा उठा सकता है उसके आन्तरिक भावों के अच्छे होने में संदेह नहीं। वह निरा सांसारिक मनुष्य ही नही है। उसके स्वभाव में कुछ ऐसे तार अवश्य है जिनसे सुन्दर मधुर राग निकालने के लिए उचित रीति से उनके छूने की आवश्यकता हैं। परन्तु नाच और गान मनुष्यके नैतिक बल के विकास करने के अच्छे उपाय नहीं हैं, क्योंकि इस रीति से हमें एक चैतन्य के बदले हज़ारों निर्बल-चित्त, अदृढ़, हृदयावेग की श्रृंखला में बद्ध मनुष्यों से मिलना पड़ता है जो किसी भी अच्छे व्यावहारिक कार्य करने के योग्य नहीं। उनके इष्ट देव ही का नाम उन्हें उत्तेजित करता है। वे मामूली समझ से भी हाथ धो बैठते हैं और उनकी उपासना में उनको अच्छे नागरिक बनाने की कुछ भी शक्ति नहीं होती। रहा अर्थशास्त्र और राजनीति-ये बेहूदा सांसारिक बातें हैं। इन से और इष्टदेव से कोई सम्बन्ध नहीं। फिरि भला भक्त का प्रतिनिधि सत्ता से, देश में आने वाले और जाने वाले मालों की बात जानने से, क्या मतलब ? वह अपने उपास्य देव के ध्यान में मग्न रहता है और हर चीज़ में वह उसी को देखता है। वह अपने देवता ही में विलकुल समा गया है। भारतवर्ष ने ऐसे कितने हो भक्त उत्पन्न किये हैं। उनके चरित्र और कारनामों की एक किताब भी है जो उत्तरीय भारत में बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु शोक ! इस सारी भक्ति से देश का एक भी दुःख दूर नहीं होता। वह उल्टी कर्म-क्षेत्र से उन व्यक्तियों का, जिनमें अनुभव शक्तिकीविशेष मात्रा

होती है. घसीट ले जाती है। इस शिक्षा के बदले कि प्रत्येक दुखी बालक कृष्ण है और प्रतेक क्लेशित मनुष्य राम है और इन्ही कृष्ण और राम की उपासना करना मनुष्य का परमधर्म है—उसे उपासना का एक झूठा आदर्श दिखा दिया जाता है। कितने दुःख की बात है कि लोग सदा इधर उधर संसार भर में प्रेम करने के लिये चीज़ों को ढूंढ़ते फिरते हैं जब कि बिना खोज किये ही वे सब समय में बराबर प्यार करने योग्य एक दूसरे को सहज ही में पा सकते हैं। वे सूर्य और चन्द्र, वृक्ष और पशु. देव और देवियों, मृत वीर पुरुषों और स्त्रियों की पूजा करते रहे हैं और अब भी करते हैं परन्तु वे इस बात को बिलकुल भूल ही से गये हैं कि अपने ही आसपास के भ्रातृ मनुष्यों की सेवा करना ही सर्वोत्तम धर्म है। भक्ति की यह सनक उतनीही हानिकारक है जितनी कि योगियों का भोग। कुछ लोग विचार और ध्यान में लिप्त हैं और कुछ रोने और नाचने में। इधर यह होता है और उधर अविद्या, दरिद्रता और रोगादि देशमें विजय दुंदुभी बजाते हुए चले आरहे हैं।

भारत की नैतिक शक्ति अन्धविश्वास द्वारा भी नष्ट हो रही है। हमारे देशवालों की तीर्थयात्रायें और व्रत आदि की बातें बड़ी भारी नैतिक शक्ति की सूचक हैं। वह देश जो हज़ारों आदमियों को दूर दूर तीर्थ-यात्रा के लिए भेज सकता है—तीर्थ-यात्रा भी कैसी जिससे कितने ही फिर लौटते नहीं-वह नैतिक बल से शून्य नहीं समझा जा सकता। बद्रिकाश्रम और अमरनाथ

को कठिन और भयानक यात्राओं में भय और मृत्यु को जितना तुच्छ समझा जाता है वैसा तुच्छ उन्हें शायद ही कहीं समझा जाता हो । भक्ति का फल प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से अन्धविश्वास के ये सैनिकगण महाबीरों की तरह बीरता प्रकट करते हैं । ये यात्रायें हमारे देश के साधारण लोगों के नैतिक बल का परिचय देतीहैं और इन्हीं से उनके नैतिक वेग की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है । परन्तु शोक, यह सारा वेग उसी प्रकार नष्ट हो रहा है जिस प्रकार पानी समुद्र में बरस कर नष्ट हो जाता है । समाजिक और राजनैतिक विचारों की नितान्त शून्यता के कारण लोग अपने आत्मिक वेगों की तृप्ति इन्हीं मूर्खतापूर्ण रीतियों से कर लेते हैं । समाज शास्त्र का पढ़ने वाला जानता है कि धर्म केवल हमारे उच्चभावों का सहायक मात्र है और धार्मिक लोग अपने वाह्य लक्ष्य को बदल कर किसी भी काम में अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं । यदि अवसर दिया जाय तो वह मनुष्य जो बद्रिकाश्रम के दर्शन अथवा गङ्गास्नान के लिये अपने प्राणों पर खेल सकता है- अन्य दूसरे अच्छे कामों में भी बहुत आत्मोत्सर्ग प्रकट कर सकेगा । भारतवर्ष में योग और अन्ध विश्वास लोगों को सारी नैतिक शक्ति को व्यर्थ की बातों में व्यय कर देते हैं-विज्ञान और सामाजिक उन्नति के लिये कुछ रह ही नहीं जाता ।

हमारे देश की नैतिक शक्ति का एक बड़ा भारी भाग छोटे

मोटे सामाजिक दोषों के दूर करने में ख़र्च हो जाता है। इस रास्ते में काम करने वाले हृदय के सच्चे हैं परन्तु उनके काम करने की रीति ठीक नहीं है। बहुत से उत्साही युवकों ने दीनों में अनाज बांटने और रोगियों की सेवा सुश्रूषा करने का प्रण करके दारिद्र्यव्रत धारण कर लिया है। ये युवक बड़े ही सज्जन और त्यागी हैं परन्तु वे नहीं जानते कि भारत ही में क्या किसी देश में भी भूख और रोग, दान से दूर नहीं हो सकते। वे अज्ञान में पड़े हुए हैं। ऐसे भी लोग हैं जो मांस और मदिरा के निषेध का प्रचार करते हैं; जाति पांति का झगड़ा उठा देने का प्रयत्न करते हैं और इसी प्रकार के अन्य सुधार के कामों को करते हैं। ये लोग भी भूल करते हैं। वे सामाजिक कुरीतियों के कारणों का पता नहीं लगाते। केवल उनसे उत्पन्न बुराइयों ही को मेटना चाहते हैं। भारतवर्ष का नाश इसलिए नहीं हो रहा है कि कुछ आदमी मांस भक्षण करते हैं या खान पान में ठीक नहीं हैं परन्तु उसके नाश का कारण केवल उनकी आर्थिक हीनता है। किन्तु हमारे देश के सुधारकों में से शायद ही कोई ऐसा हो जिसने देश की आर्थिक अवस्था पर एक भी पुस्तक पढ़ी हो। इस प्रकार मूर्खता-पूर्ण आदर्श निश्चित किये जाते हैं, व्यर्थ आन्दोलनों की रचना की जाती है और बहुत से नवयुवक गुमराह कर दिये जाते हैं। ज्यों ज्यों मूर्ख अथवा चालाक आदमियों द्वारा इस प्रकार के व्यर्थ आन्दोलनों का जन्म होता जाता है त्यों त्यों उन्नति का समय दूर होता जाता है। सब कुछ किया जाता है-किया नहीं जाता वही जिसकी

आवश्यकता है। हर तरह की छोटी २ बुराइयां किसी न किसी "देशभक्त" का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर ही लेती हैं परन्तु असली बुराई जो सबसे बड़ी है, किसी न किसी तरह लोगों की दृष्टि से बच ही जाती है।

हम सिद्ध कर चुके हैं कि योग, भक्ति, तीर्थ-यात्रा, धर्म-प्रचार और अन्य व्यर्थ आन्दोलन ही भारत की नैतिक शक्ति के अपव्यय के ज़िम्मेदार हैं। हमारे सामने गङ्गा बह रही है किन्तु हम प्यासे ही हैं। यह कैसी बात है कि वह देश जिस के सैकड़ों स्त्री और पुरुष प्रति वर्ष त्याग का व्रत धारण करते हैं ऐसी शोक जनक अवस्था में हो। मध्यकाल में योरप की अवस्था भी ठीक भारत ही की सी थी। वहां भी साधु सन्तों की कमी न थी और उनके होते हुए भी दुर्भिक्ष, रोग और दासता से वहां वाले सदा पीड़ित रहते थे। तेरहवीं शताब्दी में सेन्ट फ्रान्सिस और सेन्ट डामिनिक ऐसे नैतिक वीरों ने जन्म लिया और इस बात के होते हुए कि आज वह नैतिक बल में पहले से कम है आज २० वीं शताब्दी में योरप निवासी पहले से कहीं सुखी हैं। इस का कारण केवल यही है कि आज योरप में विद्या और बुद्धि पहले से बहुत अधिक है। १३वीं शताब्दी में लोग गिरजों के घन्टे बजाते थे, और पापों से मुक्त होने के लिए भूखे रहते थे। जब प्लेग होता था तब टाट ओढ़ते और शरीर में राख मलते थे, परन्तु आज बीसवीं शताब्दी में ठीक इसके विरुद्ध होता है। लोग अच्छे भोजन करते हैं उत्तम कपड़े

पहिनते हैं, नगर को साफ़ रखते हैं और प्लेगादि बीमारियों का सामना करने के लिए कोरन्टाइन आदि का बन्दोबस्त करते हैं। इस प्रकार विज्ञान की थोड़ी सी सहायता से आज कल मनुष्य जाति को उससे अधिक सुख प्राप्त होता है जो मध्यकाल की अत्यन्त भक्ति और तपस्या से भी न होता था। राजाओं और शासकों के प्रति ईसाई धर्म के गुरुओं और अधिकारियों के हुक्मनामे सुशासन में उतने सहायक न हो सके जितना कि आज साधारण प्रजा-सत्ताक सम्बन्धी नियमों का पालन और प्रचार है। आज ऐसी बड़ी बड़ी बुराइयां दूर हो गई हैं जिन्हें बड़े बड़े जोशीले उपदेश ज़रा भी न मिटा सके थे। मध्यकाल के सन्तों को काम करने का यथार्थ ढङ्ग ही न मालूम था। सेन्ट फ्रान्सिस ग़रीबों को प्यार करता था। वह उनके दुःख दूर करने के लिए प्राण तक देने को सदा तैयार रहता था। परन्तु उसे मालूम ही न था कि जागीरदारों और धनवानों के अत्याचार ही के कारण दारिद्र्य का चारों ओर राज्य है। इनके अत्याचारों को रोकने ही से ग़रीब लोग स्वतंत्र और सुखी हो सकते थे। फ्रांस की राज-क्रांति के करने वाले लोग नैतिक बल में पादड़ियों से कहीं कम थे, परन्तु उन लोगों ने साधु सन्तों और पादड़ियों से कहीं अधिक संसार का भला किया। इसका कारण यही था कि ये धार्मिक लोग बुद्धिमान नहीं थे और बुराइयों की जड़ पर कुठार चलाना नहीं जानते थे। मासज्योर और कोब साधु संन्यासी न थे परन्तु उन्होंने धार्मिक

संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली दाइयों से संसार का अधिक ही भला किया क्योंकि उन्होंने अपनी सब शक्तियों को रोगों के उचित रीति से नाश करने के उपायों के ढूंढ़ने में लगा दिया था। इस प्रकार योरप के मध्यकाल का इतिहास हमारे सामने बहुत सी शिक्षाप्रद बातें पेश करता है। उस समय धर्म का खूब दौरदौरा था और साधु सन्तों की भी अधिकता थी परन्तु विज्ञान, अर्थ-शास्त्र और राजनीति से दूर रहने के कारण उनसे कुछ लाभ न था। ज्योंहीं १८वीं शताब्दी के विद्वानों ने जाना कि धार्मिक रीति और नीति का सहारा ठीक नहीं—आधुनिक योरप प्रार्थनाओं, उपदेशों और पादड़ियों की आज्ञा से मुख फेर कर रसायनशालाओं, राज सभाओं (Parliaments) और सोशलिज्म (Socialism-समानता के स्वत्व) की उपासना करने लगा। जो फल निकला उससे विदित हुआ कि पुराने ज़माने में नैतिक शक्ति के अपव्यय होने के कारण ही लोग कुरीतियों के पाश से जकड़े हुए थे। वाल्टेर, रूसो, मार्क्स, डार्विन लावायज़ियर, क्यूवीअर, लैपलेस, कैक्सटन आदि विद्वान इतने शुद्ध हृदय के न थे जितने सेन्ट बर्नार्ड, सेन्ट फ्रान्सिस और सेन्ट ज़ेवियर, परन्तु आधुनिक योरप ने उस समय की अपेक्षा जब उसके नेता धार्मिक पुरुष थे-आज रोग दारिद्र्य, अन्याय और अविद्या पर कहीं भारी बिजय प्राप्त की है। बिजय का कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ-वह अभी जारी है, अन्तर केवल काम करने का ठीक ढङ्ग और ठीक विचारों का है उच्च नैतिक बल का नहीं। एक वीर सेनापति जिसे

सैनिक बातों का ज्ञान न हो-एक साधारण सैनिक से जिसने थोड़ी सी भी सैनिक शिक्षा पाई हो परास्त किया जा सकता है।

राजपूताना के रेतीले नगरों में कौन एक बून्द पानी नष्ट करना चाहेगा ? तो भी आज हज़ारों अच्छे आदमी ऐसे हैं जो यदि वे बुद्धिमान होते तो देश की बहुत सेवा करते, परन्तु मूर्खता के कारण उनका अस्तित्व निष्फल और हानिकारक है। नैतिक बल का एक श्रोत निरन्तर बह रहा है। किसी भूमि को वह उपजाऊ नहीं बनाता और न किसी बटोही की प्यास ही उससे बुझती है। यह श्रोत निरन्तर एक ऐसे खारे समुद्र में गिरता रहता है जिसमें व्यर्थ चेष्टाओं की लहरें लहराती हैं। भारतवर्ष के युवको ! तुम्हें इन नाशकारी बातों की ओर पीठ फेर लेना चाहिये। तुम्हें जानना चाहिए कि रसायन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, प्राण शास्त्र, मनो-विज्ञान और समाज शास्त्र ही आधुनिक वेद हैं और भूगोल, इतिहास, अर्थ-शास्त्र, राजनीति आदि वेदांग हैं। जब तुम्हारा हृदय मूर्खतापूर्ण जीवन की स्वार्थ पूर्ण बातों से घबड़ा जाय तो विज्ञान और समाज शास्त्र की शरण लो और पाश्चात्य दुनियां में जाओ क्योंकि वही आधुनिक कलाओं और विज्ञान की माता है।

अपने व्यावहारिक जीवन की शिक्षा प्राप्त करने के लिये अपने प्राचीन ऋषियों के पद चिन्हों पर चलने की चेष्टा मत करो। भविष्य के लिए ऋषित्व के नये आदर्श स्थापित करो। लोगों को शिक्षा दो कि पुराने देवता मर गये और तीर्थ स्थान भी संसार के

अन्य भागों में बस गये हैं। काशी और पुरी का समय था परन्तु अब काशी में भयानक मन्दिर, अधजली लाशों, मोटे सांड़ और मुसटन्डे पुजारियों के सिवा क्या रखा है? पुरी में विसूचिका और किनारे पर धीरे धीरे टकराने वाली समुद्र की लहरों के अतिरिक्त और क्या है? अब तुम्हारे तीर्थ पेरिस, जिनोवा, बार्सीलोना, मिलवाकी, यासनिया पालयाना, जेना, हैडलबर्ग आदि है। आज कल पृथ्वी पर यही स्थान ऐसे हैं जिनकी ओर सब के हृदय बड़ी उत्सुकता से आकर्षित होते हैं।

भारतवर्ष के युवको! तुम्हें आधुनिक विचारों से प्रभावित होकर संसार के अन्य देशों के साथ एक पंक्ति में चलना चाहिये। कूप मंडूक बने हुए उस अधकच्ची अस्वादिष्ट रोटी को न खाते रहो जो तुम्हारे पूर्वजों ने बनाई थी और न तुम उसे खाते हुए मिथ्या गर्व से इस बात की झूठी शपथ ही खाओ कि वह तो बड़ी मीठी है। तुम्हारा देश भयानक कुरीतियों से जर्जरित होरहा है। समाज शास्त्र और विज्ञान के अध्ययन की ओर ध्यान फेरो। देश की सारी शक्ति को उन प्रश्नों के हल करने में लगा दो जिनके हल की आवश्यकता है। वेदों की शिक्षा के स्थान में नीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति को समझो, विद्या की खोज करो, कल्पित बातों के पीछे मत दौड़ो। आधुनिक समय में पुरानी हिन्दू पुस्तकों पर सान मत धरो।

राष्ट्र की सम्पत्ति का इस प्रकार चारों ओर अपव्यय

हो रहा है। यह हृदय विदारक दृश्य है। भूतकाल की हमारी भूलें हमें बड़ी महंगी पड़ रही हैं। मनुष्य जाति अंधेरे में भटक रही है। जिनके नेत्र हैं वे पथ को सहज ही में देख सकते हैं। परन्तु उनके समान कोई भी अन्धा नहीं जो नेत्र रखते हुए भी रास्ते को देखना नहीं चाहता।

(मर्यादा)

कुछ भारतीय आन्दोलनों पर विचार।

मैं भारतवर्ष के कुछ वर्तमान सामाजिक आन्दोलनों पर विचार करना चाहता हूं। हर एक आन्दोलन से उन्नति नहीं हो सकती। कोल्हू का बैल आगे बढ़ता है, पर वह अपने नियत घेरे के चारों ओर ही घूमा करता है। रास्तों का न जानने वाला एक यात्री यात्रा करने के लिए निकलता है। वह रास्ता भूल जाता है और इधर उधर मारा मारा फिरता है। कुछ आन्दोलन ऐसे भी हैं, जिनसे हानि पहुंच सकती है। जिसे सोते सोते काम करने का रोग हो (सोमूनाम्बुलिज़्म रोग का रोगी) वह नींद में चल कर छत से नीचे गिर सकता है। पतंगा भी जो आप से आप आग में गिर कर जल जाता है, इसी तरह के हानिकारक आन्दोलन का उदाहरण हो सकता है। इसी प्रकार सामाजिक कामों में हर तरह के आन्दोलन लाभकारक नहीं कहे जा सकते। क्या आन्दोलनों में भ्रमात्मक प्रयत्न, अनुचित जोश और भूलों से भरी हुई चेष्टाएं नहीं होती हैं? दुःख और विपत्तियों

से भरी हुई इस दुनिया में पापों और व्याधियों का सामना करने के लिये जितनी भलाई की ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत बुद्धिमत्ता की भी है। युद्ध में जितनी आवश्यकता वीरता की है उतनी ही आवश्यकता युद्ध-कला के ज्ञान की भी है। मनुष्यजाति की भलाई के लिए किसी काम के आरम्भ करने से पहिले हर एक को इस बात पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये कि कहीं हम ग़लत रास्ते को न ग्रहण करलें और संसार को फिर पहले से भी ज़ियादा हानि न पहुंचावें ?

संसार में आत्मिकबल की मात्रा बहुत कम है। हम भूल से आत्मिकबल का एक कण भी फ़ज़ूल नहीं खोना चाहते। सैकड़ों तरह की विपत्तियां हैं। वे बड़ी ही प्रबल हैं। वे सँसार को कुचल रही हैं, संसार का कोई भी देश उनसे बाक़ी नहीं है। दरिद्रता अकाल-मृत्यु, बीमारियां, नैतिक और सामाजिक कुरीतियां, अज्ञान और दुष्टता आदि ऐसी आफ़तें हैं जिनके मारे पृथ्वी बोझ से दबी सी जारही है। उन लोगों की संख्या बहुत ही थोड़ी है जो इन विपत्तियों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। उन पवित्र आत्माओं की बड़ी ही कमी है जिनका हृदय सँसार के दुःखित हृदयों की गति को परख लेता है, और उनका कान उस आर्तनाद को—चाहे यह आर्तनाद पहाड़ में होता हो या घाटी में, मैदान में होता हो या बन में सुन लेता है। और जब हम भारतवर्ष को—उस भारतवर्ष को जो दुर्भाग्य का लाड़ला बच्चा हो रहा है—उस भारतवर्ष को जो आज तरह तरह की विपत्तियों

और व्याधियों का शिकार हो रहा है—देखते हैं, तो हमें पता लगता है कि यहां आत्मिक बलकी बहुत ही कमी है। यहां के नैतिक बल का श्रोत सूख गया है और देश नैतिक मौत से मरे हुए लोगों की लाशों से ज़िन्दा कब्रिस्तान बना हुआ है। एफ्रिका के सहारा मरुस्थल में ओसिस [पेड़ों के कुञ्ज] बहुत कम और दूर दूर पर हैं। भारतवर्ष में आत्मिक बल रखने वाले आदमियों की संख्या सहारा के इन ओसिसों से भी कम है। और इतनी कम है कि इनकी गिनती उंगलियों पर गिनी जा सकती है। जब यह दशा है तब यह बात ज़रूरी है कि जो कुछ आत्मिक बल हमारे देश में है उसे हम अँधे हो कर नहीं बल्कि समझ बूझ कर खर्च करें।

यदि संसार का एक भी अच्छा आदमी या स्त्री अच्छे रास्ते से भटक जाय तो वह संसार के लिये एक बिपत्ति सिद्ध हो सकती है। केवल काम ही से संसार की सहायता नहीं हो सकती। काम हों पर वे ठीक काम हों। भारत इतना ग़रीब है कि एक २ कौड़ी उसके लिए बहु मूल्य है। अन्य देशों में देशभक्तों और मानव-जाति के प्रेमियों के झुन्ड के झुन्ड हैं। ये लोग अपने देश का हित सदा सोचा करते हैं। परन्तु भारतमाता अपने कुछ अयोग्य, भीरु और गुमराह बेटे और बेटियों ही पर गर्व कर सकती है। जो कभी कभी उसके भविष्य के विषय में कुछ सोच लिया करते हैं। ऐसी नैतिक गिरावट और बुद्धि की दरिद्रता पर रोटी का एक सूखा

टुकड़ा भी किस प्रकार किसी को हाथ उठा कर दिया जा सकता है। बिलासिता के लिए एक फूटी कौड़ी का भी खर्च करना कैसे उचित कहा जा सकता है? भारत के सारे युवकों और युवतियों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है। उनका कर्तव्य है कि सारी कठिनाइयों पर पूरा पूरा विचार करते हुऐ अपनी योग्यता और अपनी शक्ति को देश के दुःख दूर करने के लिए लगावें। अब आओ, देखें, उन आन्दोलनों में जिनकी आज भारतवर्ष में धूम है, कहां तक इन बातों के अनुसार काम किया जाता है। इससे पहिले कि वे बुरे या भले कहे जायं मैं उनमें से दो के ऊपर विचार करता हूं।

(१) नीच जातियों के उठाने का आन्दोलन।

इस बड़े प्रश्न के विषय में, अन्त में हिन्दुओं के विवेक की जागृति हुई है। यह प्रश्न उन प्रश्नों में से एक है जिनका उस समय से कोई ख्याल ही नहीं किया गया, जब से भारत ने भगवान् बुद्ध और उन की शिक्षा से लज्जित होना सीख लिया है। आजकल तो इस प्रश्न ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। अब भारत ने उस अस्वाभाविक और नाशकारक जातिविभेद के विरुद्ध खड्ग धारण किया है जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से, या कम से कम एक हिन्दू को दूसरे हिन्दू से अलग रखता है। जो शक्ति इस संग्राम की तह में काम कर रही है वह सराहनीय आवश्य है अब लक्ष्य ठीक है। यद्यपि इस आन्दोलन का अभी बचपन ही है, तोभी इसने सच्चाई के साथ काम करने वाले नवयुवकों

को अपनी ओर खींच लिया है। अब कोई भी आदमी इस आन्दोलन को बुरा नहीं कह सकता। मैं संसार भरके मनुष्यों को एक दूसरे का भाई समझता हूं। भगवद्गीता और मनुस्मृति में वर्णों का ज़िक्र है। चाहे चारों वेद वर्णों को ब्रह्म या हिरण्यगर्भ के पवित्र शरीर के सिर, हाथ, जंघा और पैर बतलाते रहें पर मैं किसी भी जाति या वर्ण को नहीं मानता।

नीच जातियों के प्रश्न को मैं उन देशभक्त हिन्दुओं की दृष्टि से नहीं देखता, जो नीच जातियों को इसलिए उठाना चाहते हैं कि इस काम से हिन्दुओं की संख्या बढ़ जायगी, या कौंसिलों के निर्वाचन में संख्या की इस बृद्धि के कारण वे मुसलमानों से बाज़ी मार ले जांयगे। न मैं इस बात ही को, जिससे साधारण हिन्दू व्यथित रहते हैं, कुछ महत्व का समझता हूं कि ईसाई धर्म पीछे से हिन्दू क़िले में सेंध लगा रहा है। मैं इस प्रश्न पर केवल एक सहृदय मनुष्य के नाते ही से सारी देशभक्ति, जाति-भक्ति या इसी प्रकार के अन्य ख्यालात से दूर रह कर विचार करता हूं। नीच जाति का मनुष्य मनुष्य है, और इसलिये, मेरे विचार से वह मनुष्यों के सारे स्वत्वों के पाने और कर्तव्यों के पालन करने का योग्य पात्र है। इसी दृष्टि से मैं इस आन्दोलन को जो एक भटकी हुई भेड़ को झुंड में लौटा लाने का काम करता है, सराहनीय और अच्छा समझता हूं।

इस विचित्र संसार में सारी चीजें वैसी ही नहीं होतीं,

जैसी वे दीख पड़तीं हैं। हज़ार तरह के आड़े सीधे भलाई बुराई के ताने बाने हमारे जीवन में मौजूद हैं और इसलिए चारों ओर देखने भालने की ज़रूरत है। जीवन के रहस्य सीधे सादे नहीं। उसकी भूल भुलैयों के कारण. किसी सामाजिक काम के ऊपर मत स्थिर करना बड़ाही टेढ़ा काम है।

नीच जातियों के प्रश्न का एक दूसरा अंग भी है। सब से पहले हमें यह पूछना है कि वे कौन लोग हैं, जो भारत की नीच जातियों को मनुष्यता के समानस्थल पर लाना चाहते हैं और जो उनके हज़ारों वर्ष से खोये हुए समानता के हक़ को फिर वापस दिलाना चाहते हैं। इसका उत्तर यह है कि हिन्दुस्तान के नवयुवकों ने इस काम को अपने हाथ में लिया है। हम फिर पूछते हैं कि वह सामाजिक समानता किस प्रकार की है जो वे इन नीच जातियों को देना चाहते हैं? उत्तर मिलता है कि वे उनको देश की अन्य जातियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—की बराबरी का हक़ देना चाहते हैं। यदि ऐसा ही है, तो अच्छा है। लेकिन, अब इस प्रश्न का हास्यास्पद अङ्ग आगे आता है कि क्या ये नीच जातियों के उद्धार करनेवाले लोग स्वयं भी मनुष्यता के समान स्थल पर खड़े हुए हैं? क्या उनको वह मान प्राप्त है जो एक साधारण मनुष्य की शान के लिए ज़रूरी है? वे कहते हैं कि समाज में नीचे गिने जाने के कारण शूद्र लोग अपनी आयु अंधकार और अज्ञान में व्यतीत करते हैं, मानवी स्वत्वों से वञ्चित रहते हैं और इस प्रकार उन्नति करने का अवसर नहीं

पाते। परन्तु प्रश्न होता है कि क्या इन लोगों की हालत कुछ अच्छी है और क्या इन्हें मानवी स्वत्व प्राप्त हैं ? ये ग्रेजुएट, ब्राह्मण, उच्च-जाति वाले, राजा और ज़मींदार कौन हैं जो नीच जातियों को मनुष्यता के भूतल पर बैठाना चाहते हैं ? क्या वे स्वयं भी मनुष्य हैं और क्या संसार का कोई सभ्य मनुष्य उन्हें भी मनुष्य कह सकता है ? वे तो स्वयं संसार की दृष्टि में शूद्र हैं और इस पर भी वे शूद्र जातियों को अपनी 'उच्च' सामाजिक स्थिति में लाना चाहते हैं। क्या वे भी सामाजिक उच्चता की डींग हांक सकते हैं ? सभ्य मनुष्यों की दृष्टि में सारे हिन्दू अति नीच हैं। चाहें वे राजा हों या रईस, पण्डित हों या भङ्गी, सारस्वत हों या नामशूद्र, महामहोपाध्याय हों या चाण्डाल, उनकी इस प्रकार की अवस्थायें उनमें से किसी को मनुष्यता के उच्च स्थान पर नहीं बिठा सकतीं। वे समाज की अति नीच श्रेणी हाटेन्टोज, ज़ूलू, काफ़िर, मिश्रियों, ब्रह्मियों या अनामियों के साथ गिने जाते हैं, चाहे वे अपने को रेशम के कीड़े समझें, या घास या मोरी के, इस अन्तर से उनकी हैसियत ज़रा सी भी नहीं बढ़ती।

यह बात बड़ी ही हास्यास्पद तथा निराशाजनक है कि हिन्दू शिक्षित समाज जिसकी स्वयं दशा अच्छी नहीं, नीच जातियों को ऊपर उठाना चाहता है। यह तो अपने आपको धोखा देना या जान बूझ कर अन्धा बन जाना है। वे समझ बैठे हैं कि शूद्रों के लिए यह बड़ी बात होगी कि वे ब्राह्मणों के साथ भोजन कर सकें या

उनसे मिल सकें परन्तु वे भूलते हैं। इससे कुछ लाभ नहीं, इससे तो इतना ही होगा कि एक शूद्र दूसरे शूद्र के बराबर हो जायगा, परन्तु जो भाई इन शूद्रों और नीच जातियों को सभ्य जातियों से अलग करती है, वह उस नाली के मुक़ाबले में इतनी गहरी है कि उच्च और शिक्षित शूद्रों से नीच और गन्दे शूद्रों का मेल मिलाप हो जाने पर भी उस महान् कार्य्य में जिसकी मनुष्य जाति को ज़रूरत है—कोई भी सहायता न मिलेगी। रेशम का कीड़ा गर्व कर सकता है कि मैं चमकदार हूं, मेरे नाम की हर कहीं चर्चा होती है, मेरे द्वारा बनाई हुई चीज़ से रेशम बनती है, जिसे राजा महाराजा पहिनते हैं, पर यथार्थ में, वह भी एक वैसा ही कीडा है जैसा टसर का। यदि टसर का कीड़ा भी शहतूत के पेंड़ों पर छोड़ दिया जाय और उसका भी मान वैसा ही. होने लगे जैसा कि रेशम के कीड़े का, तो भी वे दोनों मनुष्य पद को प्राप्त नहीं कर सकते। पुनर्जन्म के आवागमन के सिद्धान्त पर विचार करते हुए कहना पड़ता है कि मनुष्य का चोला पाने के लिए उन्हें नये सिरे से ज़न्म लेना चाहिए। कीड़ों में वे चाहे जितने अच्छे समझे जाते हों पर उनका मान रेंगनेवाले जीवों से अधिक नहीं हो सकता। शिक्षित हिन्दू नीच हिन्दुओं के उठाने के लिए एक समुदाय बनाते हैं। इसी प्रकार यूरोप के कुत्ते भी एशिया के बाजारी कुत्तों को अपने बराबर और इस योग्य बनाने के लिए कि वे भी लेडियों की गोदों में बैठने और पेरिस और लन्दन के धनकुबेरों के कमरों में चेहल कदमी करने का हक़ पा जायें, एक

मण्डल बना सकते हैं । नीच जातियों को ऊपर उठाने वाले इन व्यक्तियों से मैं कहूंगा "वैद्यवर ! अपनी ही दवा करो" ।

यह तो ऐसी ही बात हुई कि संसार के सारे लँगड़े मिलकर लगड़ों की मदद करें और अंधे अंधों की आंखें बनावें । भारत की नीच जातियों में भी बड़े भेद बिभेद हैं । प्रथम श्रेणी का चाण्डाल साधारण चाण्डाल से घृणा करता है । यदि ये चाण्डाल लोग अपने आपस में सामाजिक समानता कायम करने के लिए एक सभा का सँगठन करें तो भारत के सुधारक लोग क्या कहेंगे कि सभा बुरी नहीं, कुछ न होने से कुछ होना अच्छा ही है । परन्तु इन चाण्डालों में चाहे समानता पैदा होजाय, पर क्या इन्हें मन्दिरों में पैर रखने का, कुओं में पानी भरने का, पाठशालाओं में शिक्षा पाने का हक़ मिल जायगा ? यदि प्रतिष्ठित हिन्दू को मनुष्यता के सामाजिक बाज़ार का रुपया मानलें, तो चाण्डाल फिर भी तांबे का खोटा पैसा ही रहेगा । और कोई सराफ़ उसे अच्छे पैसे के स्थान में लेने के लिए कदापि तैयार न होगा । अतएव शुद्धि सभाओं का बनाना नैतिक बल का व्यर्थ खर्च करना है । इस बल को असमानता के प्रश्न के हल करने में बड़े पैमाने में लगाना चाहिए था, जिससे इसके बजाय कि नीच श्रेणी के चाण्डाल प्रथम श्रेणी के चांडालों के बराबर होजायं; सारे चांडाल हिन्दुओं की बराबरी के होजाते । यह बात ठीक है और मैं इन सुधारकों से कहता हूं कि तुम वर्तमान समय के हिन्दुओं को, जिनकी बराबरी का तुम शूद्रों को बनाना चाहते हो, मनुष्य समाज रूपी बाजार के चलते हुए सिक्के समझने

में बड़ी भारी भूल करते हो । प्रतिष्ठित हिन्दू एक घिसा हुआ 'सिक्का' है और आज संसार के बाज़ार में उसकी की कोई पूछ नहीं। सामाजिक असमानता का प्रश्न इस प्रकार हल होसकता है कि सारे हिन्दुओं को चाहे वे द्विज हों या चांडाल--संसार की सभ्य जातियों की बराबरी के दर्जे पर घसीटा जाय। इन शुद्धि सभाओं में शक्ति और रुपया खर्च करना व्यर्थ है । जब सारा भारत नीच जातियों से भरा हुआ है तब यह फ़ुज़ूल है कि कुछ निम्न श्रेणी के नीचों के उठाने की ओर चित्त दिया जाय।

(२) शिक्षा

आज कल बहुत से विद्वान अपने अपने शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तावों को लेकर आगे बढ़े हैं। शिक्षारूपी आकाश में मिसेज़ बिसैन्ट, मि० मालवीय और मि० गोखले आज कल खूब चमक दमक रहे हैं। साथ ही, फर्गुसन कालेज, दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेज, गुरुकुल आदि पुराने तारागण भी अपने नियत क्षेत्र के भीतर चक्कर मार रहे हैं। मालवीय जीने जो हिन्दू विश्वविद्यालय का बड़ा भारी प्रस्ताव किया है, उसे सर्व-साधारण से कुछ सहायता मिली है। यह आरम्भ अच्छा है । लेकिन हमें विचार करना चाहिए कि क्या हमारे देश वालों को ऐसी संस्थाओं से लाभ हो सकता है? मालवीय जी का कहना है कि इस विश्व-विद्यालय से हिन्दुओं में ऐक्य-भाव बढ़ेगा और 'हिन्दू धर्म' की रक्षा होगी। इसमें 'धार्मिक शिक्षा' पर विशेष ज़ोर दिया जायगा।

प्रास्पेकटस में हर तरह की शिक्षा-वैज्ञानिक, औद्योगिक, शिल्प सम्बन्धी आदि का जिक्र है। नई तजवीज के आगे बढ़ाने के लिए इन सब बातों का होना ठीक ही है। आओ, हम जांचे कि हमारे युवक इन उपायों के अनुसार काम करते हुए उन्नति के शुभ पथ में कहां तक आगे बढ़ सकते हैं।

पहले तो यही प्रश्न होता है कि 'धार्मिक शिक्षा' है क्या? मुझे आज तक मालूम न हो सका कि हिन्दुत्व किसे कहते हैं? ईश्वर वादी लोग यह मानते हैं कि ईश्वर है, लेकिन हम यह न जान सके कि वह कैसा है? बहुत से आदमी 'हिन्दुत्व' के विषय में ऐसा ही मत रखते हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय के सञ्चालकों का कहना है कि वही सिद्धांत सिखाये जांयगे, जिन्हें हिन्दुओं के सब पंथ मानते होंगे। मेरा विश्वास है कि जब इन रत्नों के लिए हिन्दू शास्त्रों का समुद्र मथा जायगा, तब उस में से इन सिद्धान्तों के रूप में कुछ निरी मामूली प्रचलित स्वयं-सिद्ध बातें निकल आवेंगी। लेकिन क्या हमें विश्वविद्यालय में सत्य की शिक्षा देनी चाहिए या कुछ थोड़े से ऐसे विचारों की, जिन्हें सब हिन्दू मानते है? यदि हमें धर्म्म की शिक्षा देनी ही है, तो इसकी अपेक्षा कि हम २५ करोड़ हिन्दुओं की, जिनमें बहुदेव-वादी, अद्वैतवादी, आस्तिक, नास्तिक आदि की कमी नहीं है और जिनके मतों का यदि विभाजन किया जाय, तो मतों का एक अजायब-घर ही क़ायम होजाय—पूर्ण-तया मानी हुई बातों पर ज़ोर दें, हमें सत्य की शिक्षा पर अधिक ज़ोर देना चाहिए। फिर क्या भारत के

भावी नेता सड़ा पुराने हिन्दू ख्यालात ही का पागुर किया करेंगे ? क्या वे ख़ुद कुछ सोचने का साहस न करेंगे ? क्या सारी धार्म्मिक सच्चाइयां और आदर्श हिन्दुओं के उपनिषद् आदि धर्म्म ग्रन्थों ही में बन्द हैं ? धार्म्मिक-शिक्षा की यह लटपटी वाणी ऐसे आदमियों के मुंह से सुन कर बड़ा ही दुःख मालूम होता है, जिनकी नज़रों में धर्म आत्म-संरक्षण का पवित्र प्रकाश नहीं है, किन्तु जो धर्म्म को एक गिरी हुई निर्जीव जाति में जातीय एकता के नाम से पुकारी जाने वाली एकता या जत्थों के झगड़ों के मिटाने का उपाय समझते हों। हम बहुत से आदमियों को जानते हैं जो हम से चारों वेद के सामने सिर झुकाने को कहते हैं क्योंकि सारे हिन्दू ऐसा ही करते हैं। वे ऐसा करना बिना किसी शंका के हिंदुत्व का एक सर्व-स्वीकृत सिद्धांत मानते हैं। मैं सत्य और उन्नति के नाम पर इस धार्मिक भड़ैती का विरोध करता हूं। हम नहीं चाहते कि हमारे बच्चों को हिन्दुत्व के भण्डार की यह फफूंदी लगी हुई रोटी का टुकड़ा खिलाया जाय, जो हिन्दुओं के ये नये जोशीले भांडारी उनके सामने रख रहे हैं। चाहे इन मानसिक बेड़ियों के सिवा, जो एकता के चिन्ह सदृश धारण की जानी चाहिए, कोई और दूसरा उपाय ऐसा न भी हो जो हिन्दुओं को एकता के सूत्र में बांध सके, तो भी हम नहीं चाहते कि हमारे युवक और युवतियां कृत्रिमता और आध्यात्मिक आलस्य में पाले पोषे जांय। इस कीमत पर एकता खरीदने के योग्य वस्तु नहीं है। क्या इस तरह की 'धार्मिक, शिक्षा प्रति दिन

हजारों पुरोहितों और फ़क़ीरों द्वारा नहीं दी जाती ? अभी भारत में इस तरह की शिक्षा की कमी नहीं है। यह आश्चर्य्य की बात है कि भारत का हरएक हितेच्छु इसके बजाय कि वह सारे संसार की एकत्रित सम्पत्ति में हाथ डाले, संसकृत के दिवालिये खज़ाने ही की छान बीन में लग जाता है। वैदिक सूत्रों पर लड़ झगड़ कर और शाम सबेरे मंत्रो का उच्चारण करके भारत का उद्धार करना लोगों ने बड़ा ही सहज समझ रक्खा है। लेकिन सामाजिक समता और आत्म-गौरव, वैज्ञानिक खोज और तर्क-सिद्ध मत, परिमित व्ययी स्वाधीनता और संघ, सार्व्व-जनिक भाव और सामाजिक उन्नति के भावों का पैदा करना बड़ा कठिन है। 'धार्मिक शिक्षा' के नाम पर इन युवकों को सिखलाया क्या जायगा ? मैं समझता हूं कि उन्हें वेदों का सम्मान करना सिखलाया जायगा, जिन्हें वे चाहे पढ़ भी न सकें। उन्हें यह सनातन अंतर याद कराया जायगा कि श्रुति दैवी हैं और स्मृति मनुष्य कृत, उन्हें चार वर्ण समाज के चार खम्भे बताये जायंगे, और देवताओं और देवियों की उपासना सिखाई जायगी, इत्यादि। मैं उन्नतिशील भारत से सच्चाई के साथ पूछता हूं कि क्या यह धार्म्मिक शिक्षा का भाड़े पर लिया हुआ 'शिक्षा-क्रम' अब फटे हुए चिथड़े की तरह नहीं होगया है ? हम चाहते हैं कि भारत के भावी निर्म्माता आधुनिक आचार्य्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करें, वे संसार भर के परम बुद्धिमान लोगों से ज्ञान सीखें, वे धर्म्म की ओर तर्क-सिद्ध मत और व्यक्तित्व के आधुनिक ढंग से बढ़ें,

और इस तरह अपने लिए दृढ़ और मौलिक मत स्थिर करें। उनके मनों में अवैज्ञानिक और काल्पनिक बासी विचारों के ठूसने से फ़ायदा ही क्या? सत्य के स्थान में उन्हें झूठ और सच की खिचड़ी, बेतुकी और गड़बड़ बातों से भरे हुए शास्त्रों की उस शिक्षा से जिस से वे अपने देशवालों के भाग्यों का निर्म्माण करेंगे, भलाई ही क्या? क्या ऐसे मल्लाह अपनी नाव को कभी पार लगा सकेंगे?

फिर इन के समाज के विषय में क्या विचार होंगे? क्या वे मनु की स्मृति को सब कुछ समझ बैठेंगे और ऐसे समय में उसी की सहायता से हिन्दुत्व की रक्षा करेंगे? यह कितने दुःख की बात है कि जब सारा संसार तो आधुनिक आचार्य्यों के बुद्धि बल से उत्पन्न ताजे और पोषक भोजन को पा रहा हो, उसी समय हमारे भूले भटके हिन्दू युवक अपने नेताओं के कारण ब्राह्मण, गृह-सूत्र, मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति ऐसे ग्रन्थों में अच्छे और पोषक पदार्थ ढूंढते हुए नज़र आवें। ये लोग विक्रम की इस बीसवीं शताब्दी में विक्रम से बीस शताब्दी पहिले के बचे खुचे माल पर जीवन टेर करना चाहते हैं। संस्कृत का कोई भी ग्रन्थ हमारे युवकों को नहीं बता सकता है कि आज समाज का संगठन किस तरह होना चाहिए? यदि सच्चे सामाजिक सिद्धान्त प्राचीन ग्रन्थों से सीखे जा सकते हैं, तो फिर काशी के पण्डितों ही को सब से बुद्धिमान समझो और फिर वेही नवीन भारत

के नेता हो सकते हैं। लेकिन कौन ऐसा मूर्ख होगा जो भारत के भविष्य को काशी और नदिया के पण्डितों के हाथों में सौंप देगा। हमें सदा पीछे देखने के बजाय आगे देखना चाहिये। नये अवसर नये कर्तव्यों की शिक्षा देते हैं। समय के परिवर्तन से प्राचीन बातें; फ़ुज़ूल हो जाती हैं। जो सत्य के साथ सदा रहना चाहते हैं उन्हें सदा आगे बढ़ते रहना चाहिए। फिर धर्म की शिक्षा ही सब कुछ नहीं है। सामाजिक आदर्श होना चाहिए। एक आदमी ब्रह्म और पुनर्जन्म पर विश्वास कर ले. लेकिन उसे राष्ट्रीय प्रश्नों, आर्थिक व्यवस्था विवाह, स्त्रियों का पद, जातीयता, समाज के मुक़ाबिले में व्यक्ति के हक़ आदि बातों के विषय में भी ज्ञान होना ज़रूरी है।

आज कल एक आदमी के लिए केवल आस्तिक या अद्वैतवादी, वेदान्ती या सांख्य-शास्त्र का मानने वाला होना ही काफ़ी नहीं है। उसे राष्ट्र के विषय में भी कुछ मत स्थिर करना होगा कि वह परिमित राज-सत्ता चाहता है या स्वेच्छा-चारी राज-सत्ता, उसे प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र पसन्द है या धार्मिक लोगों द्वारा सञ्चालित राष्ट्र, इत्यादि। फिर उसे स्त्री, तथा उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, और पारस्परिक स्वत्वों और कर्तव्यों और साथही संसारकी आर्थिक व्यवस्था पर अपना मत स्थिर करना होगा। आधुनिक सभ्यता में वड़ी गुत्थियां हैं। आज बहुत से प्रश्न ऐसे उपस्थित हैं जिन का भूतकाल के हिन्दू शास्त्रकारों ने स्वप्न में भी ख्याल नहीं किया था। अब प्रश्न होता

है कि इन प्रश्नों पर हिन्दू विश्वविद्यालय क्या शिक्षा देगा ? क्या हिन्दू शास्त्रों के अनुसार मनु की बताई हुई आठ मंत्रियों की राज सभा का चर्खा सदा ही चल सकता है ? क्या हमारे युवक यह सीखेंगे कि स्त्री को कभी स्वतन्त्रता न मिले ? (न-भजेत स्त्री स्वतन्त्रता-मनु)। क्या वे आधुनिक प्रतिनिधि सत्तात्मक राष्ट्र से इसलिए आंखें मूंद लेंगे कि हिन्दू काल में तो वह था ही नहीं ? शिक्षा से मनुष्य अपने जीवन के कर्तव्यों के पालन करने में समर्थ होता है। वह युवक किसी काम का नहीं, जिसने अपने धार्म्मिक और राजनैतिक मत स्थिर नहीं किये। शिक्षा उसे बड़े प्रश्नों पर दृढ़ मत स्थिर करने के योग्य बना सकती है। क्या मालवीय जी के कार्य्य-क्रम से ऐसा होने को आशा है ?

इस विश्वविद्यालय में किस तरह की राजनीति की शिक्षा दी जायगी ? भारत में कितने ही राजनैतिक दल हैं। भारतीय युवक को इन दलों में से किसी एक में होना चाहिए। यह विश्व-विद्यालय किस दल की राजनीति सिखावेगा ? यदि वह राजनीति से तटस्थ रहा तो उसका होना न होना बराबर है। मालवीय जी बतावें कि विश्वविद्यालय का किस दल से सम्बन्ध होगा ? इस समय जातीय हिन्दू विश्वविद्यालय बन ही नहीं सकता। राजनैतिक प्रश्न ऐसे होते हैं कि उनके कारण पिता और पुत्र को एक दूसरे के मुकाबिले में आ जाना पड़ता है। इसलिए इसे कुल हिन्दुओं का विश्वविद्यालय कहना फुजूल है। यह जाति के एक

भाग का कहा जा सकता है, क्योंकि कुल जाति न तो राजनैतिक और न धार्म्मिक प्रश्नों ही पर एक मत है। क्या यह विश्वविद्यालय लन्दन के 'टाइम्स' की तरह कपट, ज़िद, कट्टरपन और राजनैतिक सङ्कीर्णता सिखाने के लिये स्थापित होगा? या यह उन्नति और ज्ञान का प्रचार करेगा? सत्य ही सच्चा प्रकाश है। हमें पहिले सत्य चाहिए, पीछे एकता। असत्य, बन्धन और मृत्यु की अवस्था में भी एकता हो सकती है, लेकिन ऐसी एकता की हमें ज़रूरत नहीं। सत्य से पहिले झगड़े फ़साद हो सकते हैं लेकिन सच्ची एकता सत्य ही के आधार पर टिक सकती है। धर्म हो या समाज, सब में सत्य की ज़रूरत है और फिर एकता तो आप से आप आजायगी। जो सत्य को प्यार करते हैं, वे हमारे साथ हैं। जो उस से घृणा करते हैं, वे हमारे विरोधी हैं, चाहे फिर वे हमारे माता, पिता या सम्बन्धी ही क्यों न हों। संसार हिन्दू और मुसलमान, हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी, पूर्वीय और पश्चिमीय दलों में नहीं बंटा है, वह केवल दो ही दलों में बंटा है। एक है सत्यका प्रेमी और दूसरा है उसका विरोधी। इसके पहिले कि भारत फले फूले, उसे सत्य के आरे पर चिर जाना चाहिए। 'हिन्दू' 'मुसलमान', 'गोरे' और 'काले' की पुकारें अर्थ हीन हैं। 'हिन्दू विश्वविद्यालय' के नाम से कुछ भी पता नहीं चलता कि वह किस तरह का विश्वविद्यालय होगा। उसे साफ़ साफ़ प्रकट कर देना चाहिये कि उस के धार्म्मिक और सामाजिक सिद्धान्त क्या होंगे, जिससे पता चल सके कि वह किस तरह के आदमी पैदा करेगा।

मैंने इन प्रश्नों को अपने युवकों और युवतियों को गुमराह होने से बचाने के लिये आगे रक्खा है। मैं अभी धर्म्म और समाज पर कोई मत प्रकट नहीं करना चाहता। इस लेख से मेरा मतलब अपने विचारों को प्रचार करने का नहीं, किन्तु एक महत्व-पूर्ण प्रश्न को भारत की उठती हुई सन्तानों के सामने रखने का है। 'हिन्दू' 'जातीयता' 'एकता' और 'उन्नति' शब्द के बहाव में हमें बह न जाना चाहिए। हमें सत्य की खोज करना चाहिये और उसी को सब बातों की कसौटी मानना चाहिए। 'हिन्दुत्व' या 'उन्नति' के नाम पर चलाये हुए किसी काम में हमें अपनी शक्तियां उस समय तक न ख़र्च करनी चाहिये जब तक हम यह न जानलें कि हां, इस काम की देश को और काम से ज्यादा ज़रूरत है। रात के चौकीदार की तरह मैं सब युवकों से कहता हूं "जागते रहना, रात अंधियारी है। रास्ते में बड़े विघ्न और बाधायें हैं। अविश्वास, भ्रम और उदासीनता के बादल सत्य-चन्द्र को हमारे अश्रु-पूर्ण नेत्रों से छिपाये हुए हैं। भारत के युवकों और युवतियो! तुम्हारे चारों ओर अन्धकार है। इस में तुम्हारे गुमराह हो जाने का बड़ा डर है। इस अन्धकार-मय निशा में सत्य तुम्हारा प्रकाश सिद्ध हो! सत्य के प्रकाश से तुम कभी सुपथ से नहीं भटक सकते।"

यानिशा सर्व्वभूतानां तस्यां जागर्ति सयमी।

—०—

भारतवर्ष और संसार के आन्दोलन।

बीसवीं शताब्दी में संसार भर के सभ्य देशों का रूप पलट जायगा। भारत संसार से बाहर नहीं। सदियों तक संसार से अलग रहने की वजह ही से भारत को इतना नीचे गिरना पड़ा। अलग रहकर उन्नति होही नहीं सकती। उन्नति के लिए अखाड़े ही में कूदना पड़ता है। संसार के साथ चलने के लिये जिन बातों की ज़रूरत है, अभी उनका भारतवर्ष में कहीं पता ही नहीं। ज़रूरत है कि हम अपनी मानसिक दृष्टि का बढ़ावें और यूरोप के आन्दोलनों से सम्बन्ध रखें। इस के लिये हमें ये बातें करनी चाहियें:—

(१) हमारे नौजवान विदेशी भाषा सीखें। अंग्रेज़ी एक अच्छी भाषा है, लेकिन संसार भर को वही एक भाषा नहीं है। फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश और इटालियन भाषाओं के सीखने की भी ज़रूरत है। यूरोप के लगभग सभी देश फ्रेंच भाषा बोलते हैं। उस में नये नये आविष्कारों की पुस्तकें भी अच्छी अच्छी हैं। दुःख की बात है कि भारतीय युवक को यूरोप की यात्रा करने में फ्रेंच भाषा न जानने की वजह से गूंगे और बहरे की तरह रास्ता काटना पड़ता है। जर्मन साहित्य वैज्ञानिक पुस्तकों से भरा पड़ा है। विज्ञान की उन पुस्तकों में से बहुत सी जो इङ्गलैंड में पढ़ाई जाती हैं, जर्मन भाषा से अनुवादित होती हैं।

लन्डन का रास्ता जान या नाप करही हमारे 'नेता' इस बीसवीं शताब्दी में शिक्षक और दीक्षक बन बैठते हैं। वे अपने को राजनीति-धुरन्धर समझते हैं, परन्तु उन्हें इस बात का कुछ पता ही नहीं कि आजकल के यूरोप में कौन कौन से बड़े आन्दोलनों की धूम है ? स्पैनिश भाषा का जानना भी उनके लिए ज़रूरी है जो दक्षिण अमेरिका के राज्यों का हाल जानना चाहते हैं। आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज और हार्वर्ड के विश्वविद्यालयों की बासी तिबासी शिक्षा से काम न चलेगा। वर्तमान भारत यूरोपीय जीवन के श्रोत जेनिवा, पेरिस, रोम और बर्लिन में गोता लगाये बिना तेज़ी से आगे बढ़ ही नहीं सकता है। हमें अपने युवकों को इंगलैंड भेजकर रुपया खराब न करना चाहिए। हमारे बेसमझ ग्रेजुएट लोग ही उस देश को उन्नति की साक्षात् मूर्ति समझते हैं। यथार्थ में वह एक बड़ा ही पिछड़ा हुआ देश है। गुरुकुल, बंगाल का नेशनल कालेज आदि जातीय संस्थाओं को यूरोप की अन्य भाषाओं की शिक्षा का काम अपने हाथों में लेना चाहिए। उत्तरीय भारत के विद्यार्थी को चाहिए कि अब वह फ़ारसी को दूरसे नमस्कार करले। फ़ारसी से भारत को लाभ ही क्या ? उसका स्थान अब फ्रेंच, जर्मन और इटेलियन भाषाओं को मिलना चाहिए। हां हिन्दुस्तानी हमारी भाषा है और उसे हमें अवश्य पढ़ना चाहिये। कितने ही भारतवासी विदेशों में संस्कृत की विशेष योग्यता बढ़ाते जाते हैं। भारत में अच्छे अच्छे संस्कृतज्ञों की कमी ही क्या है ? हमें अपने इन युवकों को यूरोप की भाषायें

सीखने और इस तरह उन्हें यूरोप और भारत में सम्बन्ध पैदा करने के लिए तैयार करना चाहिए।

(२) भारतीय युवक इस समय इङ्गलैंड और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। उन्हें फ्रांस और स्विटज़लैंड के विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाना चाहिए। मिश्री, तुर्की, चीनी और जापानी विद्यार्थी इन्हीं देशों के विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाते हैं।

(३) ऊंच जातियों को पुरानी लीक पीटना छोड़ना चाहिए। हमारे रीति रिवाज, जिन पर बहुत से कम-अक्ल जाति हितैषी इसलिए गर्व करते हैं कि वे जातीय चिन्ह हैं, यूरोप और भारत के बीच में रोड़े सिद्ध हो रहे हैं। हरिद्वार और पुरी की यात्राओं की ज़रूरत नहीं। हमें यूरोप के यात्री बनना चाहिए। पारसी लोग ऐसा कर चले हैं। लेकिन और लोग इसे उस समय तक न कर सकेंगे जब तक वे अपना पुराना रास्ता न छोड़ेंगे। कुछ लोग ख्याल करते हैं कि भारत के भूत और भविष्य का गठ-बन्धन 'धोती' 'दाल' और 'मैले आंगन' ही से होगया है। हमारे कुछ देश वासी सोच बैठे हैं कि संसार भरमें भारत ही एक ऐसा देश है, जिसमें धर्म रह गया है। उन्हें हर चीज़ की प्राचीनता पर गर्व है। ये बातें उन्हीं के लिए रहने दो, जो 'गुणज्ञ' कहलाते हैं। उनके मुंह से जिन्हें लाखों आदमियों के संहार करने वाले महासंग्राम में समय की टेढ़ी चाल का मुकाबला करना पड़ता है, ये बातें ज़रा भी शोभा नहीं देतीं। हां, अगर लोग अपने को भारतीय ज़नाना

चहार-दीवारी के भीतर बन्द कर लें, तो भले ही उन्हें इस बदलने वाले ज़माने की सख्तियों की आंच न मालूम पड़े और वे अपने दिमागों के बल से गङ्गोत्तरी या हिमालय के पास बैठे हवाई महल बनाते रहें। सड़े गले ख़्यालात के मुताबिक चलने के बजाय हमें अब संसार को सभ्यता की सब से नई पोशाक में देखना चाहिए। जापान ने ऐसा ही किया। उसने गड़े हुए मुर्दे कब्र से नहीं उखाड़े। भारत के सच्चे काम करने वालों से मैं कहता हूं, "आगे देखो और बाहर देखो, न पीछे और भीतर मत देखो।" अमीरों के लड़के और लड़कियों को विशेष शिक्षा के लिए यूरोप जाना चाहिए। यह गलत है कि फ्रांस और स्विटजलैंड में पढ़ने से अधिक ख़र्च पड़ता है। भारत के सरकारी कालेजों में जितना ख़र्च पड़ता है, इन देशों में उतने से अधिक न पड़ेगा। हज़ारों गरीब रूसी विद्यार्थी इन देशों में पढ़ते हैं।

हमारे नेताओं को हमारे समाज के जीवन को यूरोपीय समाज के आदर्शों पर मोड़ना चाहिए। चरित्र का सुधार मेशीन से नहीं हो सकता। हमारे देश के बड़े आदमी सचमुच बड़े आदमी उस समय तक नहीं हो सकते जब तक वे अपने चरित्र का सुधार नहीं करते। संतोष की बात है कि काम हो रहा है। पुराना ढंग बदल रहा है और नई बतों को स्थान मिल रहा है।

(४) भारत की उन्नति के लिए सामाजिक आदर्शों और आंदोलनों के विषय का अध्ययन बड़ा ही ज़रूरी है। हमारे देशवाले

अध्यात्म विद्या के अच्छे जानकार हैं। पर उन्हें समाज-शास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं। यूरोप में आज जितने ख्यालात ज़ोरों पर हैं, उन सबका सम्बन्ध समाज-शास्त्र से है। मतमतान्तरों के झगड़ों के दिन गये। अबतो समाज, शासन, स्त्रियों आदि के सम्बन्ध के प्रश्नों के मनन करने का ज़माना है। भारत वैसा ही लकीर का फ़कीर बना है। उसका यह ढङ्ग उस समय तक न बदलेगा जब तक उसके युवकों और युवतियों को पेरिस और जेनिवा की जीवन संचारिणी वायु न लगेगी। यूरोपीय विचारों की शिक्षा ही उसकी सुस्ती, बे-अकली, उदासीनता और कमज़ोरी को दूर करेगी। भारत में बड़े बड़े बिचारों वाले आदमी कैसे उपज सकते हैं, जब हमारे अच्छे से अच्छे आदमी पुरानी पुस्तकों के कुचले हुए मुर्दा ज़माने ही के स्वप्न देखा करते हैं। जीवन जीवित ही से प्राप्त हो सकता है। मुर्दे से मौत मिल सकती है। यूरोप जीवित है और भारत अधमरा। यूरोप से अमृत लेकर हमें भारत को ज़िन्दा करना चाहिए। भारतीय कालेज में समाज शास्त्र की पढ़ाई होना चाहिए। रूस इसी पढ़ाई से आगे बढ़ रहा है। धार्मिक पक्षपात और अँधकार के जंगल से ज्ञान और स्वाधीनता के पाने का कोई रास्ता नहीं। भारत समाजोन्नति के नये कानूनों की रचना नही कर सकता। उसे सामाजिक आन्दोलनों की सार्वभौमिक शक्तिय को समझना चाहिए। कालचक्र भारत के सिरपर खड़ा हुआ कह रहा है, "मेरे कहे अनुसार चल, नहीं तो मैं तुझे पीस

डलूंगा।" नवीन भारत को उत्तर देना चाहिए, "काल-चक्र! मैं तुझे अच्छी तरह समझता हूँ। मैं केवल तेरे कहे अनुसार ही न चलूंगा, बल्कि मैं इस तरह चलूंगा कि तुझे मेरी उंगलियों के इशारे पर नाचना पड़े।

महापुरुष

महापुरुषों के वाक्य जाति की चिरस्थाई सम्पत्ति है। उनके चरित्र जाति के युवकों के सामने उचित मार्ग पर चलने के लिए उच्च आदर्श पेश करते हैं। उनके विचारों को जीवित रखना जाति का परम कर्तव्य है।

संसार में दो प्रकार के महापुरुष होते हैं। एक वे, जो किसी विचार की धुनि में चल पड़ते हैं और उसके प्रचार में मस्त होकर सारे संसार को भूल जाते हैं। वे जान बूझ कर अपने जीवन को सङ्कीर्ण और अपूर्ण बना लेते हैं। उच्च आदर्श के अनुसार उनका जीवन प्रशंसा के योग्य नहीं होता, क्योंकि वे अपनी शारीरिक. मानसिक और नैतिक शक्तियों को पूर्ण रूप से बढ़ने नहीं देते। वे अपनी मानसिक उन्नति को तुच्छ समझते हैं। शरीर की ओर से तो बिलकुल उदासीन होजाते हैं। सभा और समाज के नियम, सभ्यता पूर्वक बात चीत करने के ढंग, सांसारिक व्यवहार का अनुभव आदि बातें उनके लिए कोई आदरणीय वस्तु नहीं हैं। नंगधड़ंग पागल उजड्ड तथा असभ्य बन कर और संसार से अलग रहकर लोगों के पथ-

प्रदर्शक बनते हैं। सदा उन्हें एक ही विचार की लौ लगी रहती है, जिसे वे हर समय हर मनुष्य तक पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं। जीवन के दूसरे अंगों के विषय में पूंछो तो उन्हें तनिक भी उनका पता नहीं। वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियां ज़ाति को एक ही मार्ग दिखलाने में खर्च कर देते हैं। जाति बड़ी बन जाती है परन्तु वे स्वयम् छोटे रह जाते हैं। वे जाति के लिए दीपक बन जाते हैं परन्तु स्वयम् मनुष्य नहीं रहते, कुछ और ही हो जाते हैं। कोई उन्हें पागल कहता है और कोई साधू। आधा संसार उनपर हंसता है और आधा उनकी पदरज को पवित्र समझ कर सिर पर चढ़ाता है।

यह तो उन महापुरुषों का हाल है जो अपना सारा जीवन किसी एक सच्चाई के प्रचार में बिता देते हैं। वे उस ताड़ के वृक्ष की तरह होते हैं जो सीधा जाता है। न उसमें छाया होती है और न फूल। वह केवल आकाश से बातें करता है। उसकी चोटी को देखकर मनुष्य मूर्छित हो गिर पड़ता है। इस प्रकार के महापुरुष सदैव संसार से अलग, नैतिक धुन में लगे रहते हैं। उनसे मिलकर साधारण मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु लाभ नहीं उठा सकते। उनको सभा, समाज, उत्सव, विवाह, मेला, त्यौहार इत्यादि का शौक नहीं होता। वे सबके कृपालु और सहायक बन सकते हैं परन्तु किसी के मित्र या लंगोटिये यार नहीं। वे दस आदमियों में बैठकर बातें

भी नहीं कर सकते क्योंकि जहां ज़रा किसी बात ने उनके विचारों को एक निश्चित मार्ग से हटाया और उनका मन विचलित हुआ।

दूसरे प्रकार के महापुरुष ताड़ के वृक्ष के अनुसार नहीं, वरन बरगद के वृक्ष के सदृश होते हैं, जिसकी शाखाओं में पक्षी बसेरा करते और जिसकी छाया से पथिक सुख उठाते हैं। जिसकी ओर देखकर दृष्टि आकाश तक नहीं पहुंचती वरन् पत्तों ही में रह जाती है। सूरज की चमक से चौंधयाई हुई आखों को हरियाली से शीतलता प्राप्त होती है। ऐसे महापुरुष संसार में रहकर और लोगों के सुख और दुःख, आनन्द और शोक में शामिल होकर घरबार के कर्तव्यों को पूरा करते हुए संसार के सामने व्यावहारिक धर्म का नमूना रखते हैं। वे अपने प्राकृतिक भावों को नहीं मारते। वे प्रेम के रक्त को नहीं बहाते फिरते। वे मानुषिक विशेषताओं और गुणों को नमस्कार करके विचार की मूर्ति बनने की कोशिश नहीं करते। परन्तु दूसरे भाइयों की तरह जीवन-मार्ग में प्रवेश करके इस प्रकार रहते हैं जैसे पानी में कमल। काम वैसे ही करते हैं, जैसे उनके पड़ोसी, परन्तु उद्देश्य का फ़र्क होता है। स्वार्थपरता नहीं वरन् परोपकार और कर्तव्य-परायणता उनके जीवन का लक्ष्य होती है।

महापुरुषों के जीवन का लोगों के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उन्हीं केजीवन को आदर्श मानकर लोग दूसरों के

क्लेश और दुःखों को मिटाने और अपनी ज़िन्दगी के सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

हर महापुरुष के मनमें एक बड़ा बिचार होता है, जिस को वह व्यावहारिक रूप से संसार के सामने लाने का प्रयत्न करता रहता है। वही उसका धर्म होता है। वही उस के जीवन के चारित्र का प्राण होता है। वही उसके जीवन के चक्र का केन्द्र होता है। वही उसके कामों के मोतियों की माला की लड़ी होजाती है। उससे बहुत से प्रश्नों का उत्तर मिलता है। उससे उस मनुष्य के कामों का भेद मालूम होता है। जिस प्रकार एक बड़े कारखाने में लोग सारी कलों को देखते हैं परन्तु एञ्जिन, जिसके बल से सारा काम चलता है, नहीं देखते, उसी प्रकार जब तक हम किसी महापुरुष के मन तक पहुंचकर उसके बड़े विचार को न समझें तब तक हम उसके जीवन से ठीक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह महापुरुष प्रतेक समय और प्रत्येक काम में भाग लेने के पहिले इस बिचार को प्रत्येक मनुष्य के सामने प्रगट करता रहे। कोई भी महापुरुष ओछे आदमियों की तरह सदैव अपने मन की बातें दूसरों के सन्मुख नहीं कहता रहता। अपनी तबियत के सम्पूर्ण अंगों को प्रत्येक भले बुरे मनुष्य को नहीं दिखाता रहता। वह अपने दुःखी मनके भावों को हर समय मित्र और शत्रु के सामने नहीं खोलता रहता, ताकि असावधान मित्र उसपर ठट्ठे का

नमक छिड़कें और सावधान शत्रु उसे और घायल करें। जो मनुष्य गँभीर और बुद्धिमान होते हैं वे नीच और अदूरदर्शी मनुष्यों की भाँति अपने विश्वासों को पल पल में वर्णन नहीं करते, परन्तु उन्हें व्यवहार में लाकर दूसरों को दिखा देते हैं कि तुम भी ऐसा करो।

महापुरुषों का जीवन हम लोगों के लिए उन्नति का मार्ग दिखलाने वाला होता हैं परन्तु वह हमारी चाल रोकने वाला घेरा, जिसके पार जाना पाप कहा जाता है, नहीं बन सकता। कोई महापुरुष नहीं चाहता कि उसके वाक्य और कार्य्य जातीय जीवन के लिये शृंखला बन जावें, जो युवा पुरुषों को आगे पैर रखने से रोकें। हम अपने महापुरुषों को अपना सहायक नहीं, बल्कि शत्रु बना देंगे, यदि हम सपूत होने के बदले कपूत होने ही को आज्ञापालन का लक्षण समझेंगे। जाति की उन्नति हर समय होती रहेगी। कौन है जो उसको रोक सके? कौन है जो अपने कामों को जातीय प्रवाह की धार रोकने के लिए बांध बनाना चाहता है? कौन है जो स्वयम् इस बात को न माने कि उसने भी समय के साथ नये विचार प्राप्त किये हैं? यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो पत्थर के खम्भे की तरह एक ही स्थान पर खड़ा रहा हो और जातीय झुण्ड दूर निकल गया हो तो वह महापुरुष नहीं, वह कुम्भकरण है। वह "दक़ियानूसी" समय का एक नमूना है। अजायब घर में रक्खे जाने के योग्य है। जातीय समाज में आने के योग्य नहीं।

भारतीय किसान

उनकी महिमा तथा उनकी सामाजिक दुर्दशा

भारतवासियों में किसान लोग मुझे सर्वप्रिय हैं। मेरे निकट महात्मा भी इन से अधिक पूजनीय नहीं, क्योंकि महात्माओं का उदरपोषण तो किसानों ही के द्वारा होता है, इसी लिये जो अन्नदाता है वही समाज में सर्वथा शिरोमणि तथा शिरमौर है। किसानों के उपरान्त दस्तकार लोगों को समाज में दूसरा आसन मिलने का अधिकार है, जैसे जुलाहे, चमार, कारखानों में काम करने वाले, लोहार, बढ़ई, राज, मज़दूर इत्यादि। इन लोगों की कार्य्य-चातुर्य्यता देख मेरा हृदय प्रेम से गद् गद् होजाता है। इन से उतर कर समाज में तीसरे पद के भागी हमारे यहा की नीच जातियां, अर्थात् शूद्र कहलाने वाले लोग हैं; जैसे कि मेहतर, कहार, डोलीवाले, रसोइये, सईस, इत्यादि। देखिये ये सब लोग समाज की तह में पड़े हुए नाना प्रकार के दुःख सहन कर रहे हैं। विचार करने की बात है कि इन पुरुष रत्नों की सृष्टि पर कैसा घोर अंधकार छाया हुआ है, उन पर कैसी मृत्युमय शान्ति फैली हुई है। क्या किसान, क्या दस्तकार, क्या नौकर, क्या चाकर, सब के सब पशु की तरह अपना अमूल्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। क्या आपका हृदय उनकी शोचनीय अवस्था पर शोकातुर नहीं होता? हे परम पिता जगदीश! इन मूक जनों को भी क्या कोई पुरुष सिंह वाणी प्रदान करेगा? क्या कवि-कुल-भूषण इनका गुण गान

कर देश में, नहीं नहीं, सारे संसार में इन के सन्मान को बढ़ायेगा ? इनके लिये भी क्या कोई महात्मा तुलसीदास या वेद् व्यास रामायण तथा महाभारत की रचना करेंगे ? यथार्थ बात तो यह है कि भारतवर्ष में सच्चे कवियों ने अभी जन्म धारण नहीं किया। आदि से अन्त पर्य्यन्त हमारे कविगण राजों महाराजों ही के गुण गान की ध्वनि अलापते चले आये हैं। उन्होंने इस रहस्य का पता तक न जाना कि जिनलोगों से समाज तथा देश का मान बढ़ता है, वे टूटे फूटे झोपड़ों के रहने वाले हमारे पूज्यपाद किसान ही लोग हैं। राजभवन के रहने वालों से किसी भी देश और समाज की वास्तविक शाभा न तो हुई है और न कभी आगे होने वाली है। शायद आप प्रश्न करेंगे कि इस अनोखे कथन से मेरा मतलब क्या है ? धनवान और प्रतिष्ठित कहलाने वालों, और बड़े बड़े पदाधिकारियों का तिरस्कार और इन असभ्य, दीन, दुःखी जनोंसे प्रेम करने में मेरा मंशा क्या है ? उत्तर में मेरा निवेदन है कि भारतवर्ष को मैं इन्हीं तुच्छ मनुष्यों की दम से गुलज़ार मानता हूं। मेरा यह अटल विश्वास है कि इन्हीं लोगों की बदौलत हम राष्ट्र कहलाने के अधिकारी होते हैं। हमारा सर्वस्व इन्हीं लोगों पर निर्भर है। भारतवर्ष में राजे. महाराजे, योगी, यती, सेठ, साहूकार, वकील, वैद्य, पंडित, इत्यादि नाम मात्र को हैं। परन्तु यहां असंख्य किसान, दस्तकार, और नीच जाति के आदमी रहते हैं। उनके अनेक गुणों पर विचार न करतेहुए भी हमें मानना पड़ता है कि केवल उनकी संख्या की अधिकता एकमात्र उनका समाज

में सन्मान का अधिकारी बनाती है। इस के अतिरिक्त देश की सारी सम्पति को वे लोग उत्पन्न करते हैं। वर्ष के आरंभ से वर्ष के अन्त तक वे सभी काम करते हैं। वे ही सब के लिये भोजन तथा वस्त्र की सामग्री तैयार करते हैं। वेही मकान, तथा सड़कें इत्यादि बनाते हं। क्या वर्षा ऋतु में, क्या कठिन असह्य धूप में, वे हल चलाते और खेत बोते हैं और वेही लोग उन सब पदार्थों को पैदा करते हैं जिनपर प्राणियों का बल और जीवन अवलम्बित है। किसान ही समाज के अङ्ग के किये विष्णु स्वरूप अन्नदाता है। किसान ही ज्योतिर्मय भास्कर भगवान है, जिस के प्रकाश से हम समस्त नक्षत्रगण दीप्तमान होते हैं। क्या स्वामी और क्या शेख, क्या पंडित और क्या प्रचारक, क्या वकील और क्या बेरिस्टर, क्या अमीर और क्या उमरा, किसान ही सब का अन्नदाता है।

दस्तकार लोग किसानों के हर एक काम में सहायता दिया करते हैं। उनका किसानों से चोली दामन का साथ है। कच्ची कपास तथा कच्ची खाल, जंगली लकड़ी तथा मैली कुचैली धातुओं का संस्कार कर तथा उनको रूप रंग देकर दस्तकार लोग उन्हें मनुष्य मात्र के लिये उपयोगी बना देते हैं। यह दस्तकारों ही की प्रवीणता का फल है कि हम लोग सुन्दर घरों में रहतें हैं और सुन्दर वस्त्र पहिनते हैं, मनोहर पात्रों में भोजन करते है और विचित्र रुद्राक्ष की मालायें धारण करते हैं

वेही उन सारी वस्तुओं को बनाते हैं जो मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक समझी जाती हैं। वास्तव में एक दस्तकार किसी जादूगर से कम नहीं। अब आगे बढ़कर देखिये कि नौकर चाकर लोग समाज की कितनी आवश्यक सेवा करते हैं। आप विचार सकते हैं कि मेहतरों के बिना आपके हर की क्या दुर्गति हो सकती है। डोलीवालों के बिना हमारी स्त्री समाज को क्या तकलीफें हो सकती हैं। मेहतर लोगों की समाज पर एक प्रकार की प्रभुता है। पर क्या वे अपनी शक्ति तथा प्रभुता का ज्ञान रखते हैं? कदापि नहीं। मेहतरों की एक अठवारे की हड़ताल से हमारे राजे महराजों तक की आखें खुल सकती हैं। उनका सारा गर्व चूर्ण हो सकता है। प्रिय पाठक गण! इन्हीं गुणों के कारण मैं अपना मस्तक इन महापुरुषों के सामने झुकाता हूं और आशा करता हूं कि हमारे पढ़े लिखे बाबू लोग' धनीगण तथा अन्य महाशय इस व्यवहार पर अचंभित तथा कुपित न होंगे। मुझे आशा है कि हमारे ग्रेजुएट्स लोग इस बात को सुनकर क्रुद्ध न होंगे कि उनकी वर्तमान स्थिति को देखते हुये मेरी श्रद्धा उन पर लेशमात्र भी नहीं। किसी वृक्ष की मज़बूती का पता चलाने के लिये हमें उसकी जड़की तरफ़ ध्यान करना पड़ता है। फूल फलादि का होना जड़ ही पर निर्भर है। इसी प्रकार समाज की दशा है। यदि हमारे राजे महराजे समाज रूपी वृक्ष के फूल फलादि कहे जा सकते हैं, तो अवश्य हमारे किसान, हमारे दस्तकार उस वृक्ष

के मूलाधार हैं, इसीलिये समाज की उन्नति और अवनति किसानों और दस्तकारों ही की उन्नति और अवनत अवस्था पर कायम है, पर बहुत से लोगों का मत ठीक इसके विरुद्ध है। वे समाज के वैभव का मुख्य कारण राजे महराजों ही को समझतेहैं। उन्हीं की अवस्था को देखकर वे समाज की अवस्था का पता चलाते हैं, यह सर्वथा भूल है। मैं तो राजे महराजों की सम्पत्ति के मूल कर्ता का उपासक हूं। क्या महल के रहने वाले महल बनाने वालों की अपेक्षा ज़्यादा आदरणीय हो सकते हैं ? कदापि नहीं। इसी पक्ष को लेता हुआ मैं अपने को समस्त निराश्रित दीन जनों का मुख स्वरूप मानता हूं। और इस समय में इन्हीं परिश्रमशील किसान, तया राज़ मज़दूर इत्यादि के विषय में कुछ आवश्यक बातों पर विचार करना चाहता हूं।

यह कैसी विचित्र शोचनीय बात है कि न तो हमारे ग्रन्थों ही में और न इतिहास ही में किसानों इत्यादि के विषय में कोई लेख हैं। उनकी महिमा बतलाना तो दूर रहा, हम देखते हैं कि उनका वर्णन मात्र तक शायद ही कहीं किया गया हो। इससे विदित होता है कि वे लोग बिलकुल तुच्छ दृष्टि से देखे गये हैं। वर्णाश्रम की प्रथा के अनुसार उन लोगों को समाज में सदा निकृष्ट स्थान दिया गया है और पंडितों तथा क्षत्री आदि के भाग में सदा उच्चही पद पड़े हैं। आप विचार सकते हैं कि इस से अधिक अन्धेर और क्या हो सकता है ? प्राकृतिक नियम का इससे बढ़कर उल्लंघन और क्या हो सकता है ? जिसके

द्वारा समाजरूपी चक्र का संचालन हो, उसीका यह अनादर ? उसी की यह दुर्दशा ? हा शोक ! वर्णाश्रम की महिमा गाते गाते लोग जामे से बाहर हो जाया करते हैं, परन्तु शोक की बात है कि वे इस विषय पर ध्यान तक नहीं देते, कि जिन मनुष्यों से समाज की शोभा बढ़नी थी उनका तो निपट निरादर होरहा है। खासा उलट फेर होगया है। क्या हिन्दू जाति के एक मुख्य अङ्ग का इस हीन दशा को प्राप्त होना वर्णाश्रम की प्रणाली को अन्याययुक्त प्रमाणित नहीं करता ? आगे वाली बात पीछे पड़ गई है। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि जाति पांति का प्रश्न ऐक्यता तथा जातियता के लिए हानिकारक है। इस विषय पर मैं वादा-विवाद नहीं करता। इस समय तो मैं केवल यही दिखलाना चाहता हूं कि वर्णाश्रम के सिद्धांत ने हमारे दिलों पर कैसा खोटा प्रभाव जमा रक्खा है जिसके कारण हम सदा से किसानादि को ब्राह्मण और क्षत्रियों से नीच मानते आये हैं, और वैसाही इस समय तक मानते जा रहे हैं। नहीं, नहीं केवल इतनाही नहीं। केवल हमी उनको नीच नहीं मानते आये बल्कि हम उनको भी ऐसी शिक्षा देते आये हैं जिससे वे अपने आपको, तथा अपने पद को निकृष्ट और तुच्छ जानें। ऐसी अवस्था में यह बिलकुल आश्चर्य की बात नहीं कि किसानादि निज मान तथा निज बल को भूल गये हों। यदि अब भी हम इन लोगों के प्रति कुछ उपकार करना चाहतें हैं, तो सब से पहले हमें उनकी चित्तवृत्ति में परिवर्तन करना चाहिये अर्थात् उनके हृदय से उस उदासीनता और पस्तहिम्मती को दूर

करना चाहिये जो आजन्म के दासत्व से इस समय उन पर छा रही है। पण्डित, साहूकार, महाजन और ज़मींदारों को इन बातों को समझाने से कोई फल न होगा, क्योंकि स्वार्थरत तथा अभिमानी पुरुष ऐसी बातों पर ध्यान नहीं दिया करते। उदाहरणार्थ, एक ग्रेजुएट् इस बात को कभी स्वीकार न करेगा, कि साधारण बढ़ई की उपयोगिता उसकी उपयोगिता से कहीं अधिक है, क्योंकि उसे तो डिपलोमे ने मदान्ध कर रक्खा है। एक राजा साधारण लोहार के समक्ष कदापि मस्तक न झुकायेगा, क्योंकि धन तथा मद में चूर वह सत्मार्ग को छोड़े हुए है। केवल किसान ही आपके आशा-पूर्ण समाचार को सुन कर कृतकृत्य होगा किसानों को अपने बल और पुरुषार्थ का स्मरण उसी समय होगा जब वह जान लेंगे कि वास्तव में उन का पद निकृष्ट नहीं, बल्कि सर्वश्रेष्ठ है। नहीं, नहीं, हमें उचित है कि हम उन को बतला दें कि उन्हीं का पद उच्च है, तथा दूसरे लोग तो कोई पद रखते ही नहीं। इन बातों को सुनकर किसान फूला न समायेगा। जब वह समझ लेगा कि वही तो सच्चा आर्य्यपुत्र है, तब वह ब्राह्मण, क्षत्री, महाजन, साहूकारों इत्यादि के सन्मुख गिड़गिड़ाना बन्द कर देगा। प्यारे भाइयों! समय आ गया है कि हम लोग अब पुराने जर्जरसिद्धान्तों को जो इस समय समाज के लिये प्राणघातक हो रहे हैं उठाकर, ताक पर रखदें और नवीन सिद्धान्तों तथा नवीन विचारों को समाज में स्थापित करें।

हिन्दू लोगों का राजा रानियों पर सदा से बड़ा ही अनुराग

रहा है, यहां तक कि किस्से कहानियां भी उन्हीं के नाम से शुरू किये जाते हैं। इसका फल यह होता है कि बच्चों की विचार शक्ति में शैशव काल ही से विकार उत्पन्न होजाते हैं। वैभवशाली लोगों को सर्व्वोच्च मानने का परिणाम यह हुआ कि किसान और दस्तकार लोग हमरी दृष्टि से गिर गये हैं। सब से बड़ा अधर्म तो हमारी धार्मिक संस्थाओं के कारण हुआ है। बौद्ध धर्म्म तथा अन्य धर्म्मावलंवियों ने अर्थशास्त्र को माया रूप समझ उसकी सदा निन्दा की है। अन्न पैदा करना, मकान इत्यादि का बनाना, और ऐसे ही अन्य परमावश्यक कार्य्यों को वे तुच्छ मानते आये हैं। उनकी समझ ने तो केवल यहीं तक काम दिया है, कि किसी सिद्ध-साधक का इन भ्रमजालों से सम्बन्ध ही क्या? इसी तरह के दोष-पूर्ण विचारों के कारण मेहनत मज़दूरी का अत्यन्त निरादर होरहा है। पहले समय के मंत्रादि में भी योगी यती ही सर्व सम्मानित माने गये हैं अर्थात ऐसे लोगों का मान होता आया है, जो दूसरों के भरोसे रह कर अपना कालक्षेप करते हैं। अब यदि आप पक्षपात त्याग कर देखें तो आपको मालूम होगा कि येही योगी यती लोग राजों महराजों के मुंह ताका करते हैं। यह बात बहुत लोगों को मालूम होगी कि भारतवर्ष के कितने ही प्रसिद्ध महात्मा लोग राजाओं के आश्रय में थे, और अब भी हैं कदाचित् वे समझे हुए हैं कि हिन्दू समाज का उद्धार राजों महराजों पर ही निर्भर है,। क्या यह लज्जा की बात नहीं कि जो लोग सुख सम्पति इत्यादि को

तिलांजली दे संसार से विरक्त हो चुके हों वही लोग विलासप्रिय राजों महाराजों से नाता जोड़ उनके कृपा-पात्र बनने की चेष्टा करें ? भारतबर्ष के लोग बस्तुतः बड़े ही अभागे हैं। यदि ऐसा न होता तो क्या उनके साधु महात्मा भी उन्हें छोड़कर राजों महाराजों से नाता जोड़ने जाते ? अन्य उपदेशक तथा सुधारकों ने भी केवल मध्यम श्रेणी ही के लोगों को उपदेश किया है जैसे कि वकील बैरिस्टर, सेठ, साहूकार, इत्यादि। किसानों, दस्तकारों इत्यादि का उन्हें ध्यान तक नहीं आया। वाह री सम्पति देवी ! इस संसार की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु तक को भी तुम अपनी ही ओर आकर्षित कर लेती हो। और किस किस की कहें, शिक्षा तथा आत्म सुधार की सामग्री भी तुम्हारे ही निकट खिचकर पहुंच जाती है। जब स्वामी और महात्मा लोग अमीर उमरों के पक्ष में जाने लगे, तो जन समूह के भाग्य में दासत्व बना बनाया है।

हम देखते हैं कि भारतवर्ष में प्रत्येक कार्य्य बड़े ही आदमियों की अर्थ सिद्धि के लिए किया जाता है। कांग्रेस में भी सरकार से उन्हीं के लिए अधिकार मांगे जाते हैं। कालेज और स्कूल उन्हीं की संतानों के लिए खोले जाते हैं। राजे महाराजे किसानों ही के रुपये से विश्व-विद्यालय बनवाने में चन्दे दिया करते हैं, और उन्हीं की सन्तानों को इसका फल मिलता है। किसान बेचारों की सन्तानों को पूछता ही कौन है ? यदि दूर देशों में विद्योपार्जन के लिए छात्रगण भेजे जाते हैं तो केवल किसानोंही की कमाई से।

इसी तरह के अन्य कार्य्यों से बड़े ही आदमियों को लाभ पहुंचता है। उनसे किसानों का क्या उपकार ? और ध्यान देकर विचारिये तो पता लगेगा कि इन समस्त कार्य्यों में किसानों ही का धन लगता है, पर वे स्वयं उनके फलों से बचित रहते हैं। इस समय पञ्जाब प्रांत में कुछ देशप्रेमी लोग आत्मत्याग कर शिक्षा सम्बन्धी कामों में लग रहे हैं। परन्तु किसके लिए ? केवल मध्यम श्रेणी वालों ही की सन्तानों के लिए। क्या यह बात विचारणीय नहीं है कि इन देश हितैषियों का अमूल्य जीवन बाबू, महाजन, वकील, इत्यादि बनाने में बिता दिया जावे ? क्या इसी को आप उन्नति कहते हैं ? आप ही कहिये, कि क्या इन बातों से किसान बिचारों को कुछ भी लाभ होता है।

एक और अद्भुत दृश्य देखने में आता है, वह यह है कि हमारे राष्ट्रीयदल वाले भी किसानों की जरा परवाह नहीं करते। कदाचित् ये लोग राजों महाराजों से विभूषित, अथवा पार्लियामेंट की रीति पर साम्राज्य बनाने का स्वप्न देख रहे हैं। इन में से जो लोग कुछ बुद्धिमान है, वे केवल मध्यम श्रेणी के लोगों का पक्ष लिया करते हैं। आश्चर्य तो यह है कि जन समूह तो किसी की गणना में आता ही नहीं। इसका कारण क्या हैं ? हम किसानों तथा दस्तकारों को क्यों भूल जाते हैं, और उनको समाज में क्यों सदा निकृष्ट स्थान देते हैं ? इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि हमारी विचार-शक्ति में पहले ही से दूषण भर गये हैं। पढ़े

लिखे साफ़ सुथरे तथा अनपढ़ और मैले कुचैले मनुष्यों के बीच हमने एक हद बांध रक्खी है, जिस तक पहुंचकर हमारी बिचार शक्तिका अन्त होजाता है। उस सीमा के आगे हमारी बिचारशक्ति जा ही नहीं सकती, परन्तु जिस सीमा पर हमारी बिचारशक्ति विश्राम पाती है, उसी सीमा से मनुष्य जातिका प्रारम्भ होता है।

हम लोग सबके सब अपने जीवन को पाखण्ड में डाले हुए मिथ्या मनुष्यों की सेवा में उसे नष्ट कर रहे हैं। हमारे समस्त धनाढ्य लोग नकली सिक्कोंकी भांति हैं। वे सच्ची मनुष्य जाति के हास्य-पूर्ण प्रतिबिम्ब हैं। मोती सदा समुद्रकी तह में बास किया करता है, सतह पर केवल खर पतवार ही उतराया करती है। ठीक यही दशा समाज में देखी जाती है। भारतवर्ष के जन जन की समूह की वर्तमान दशा बहुत ही शोचनीय तथा अविद्या रूपी अन्धकार से ग्रसित है किसान लोगों ही को सब से अधिक कर देना पड़ता है। वेही बेचारे आधे पेट खाकर और मोटे महीन कपड़े पहिन, जीवन निर्वाह करते हैं। प्लेग, अकाल इत्यादि में सब से पहले वेही भेट चढ़ते हैं। उन्हीं के धन से राजे महाराजे सरकारी कर्मचारी ज़मींदार इत्यादि अपना पेट भरते हैं। परन्तु स्वयं अपने लिये तथा अपने परिवार के लिये किसान दूसरों ही का मुंह ताका करते हैं।

जिस समय एक दीन, दुःखी, कृश तन, मलिन मुख किसान लकड़ी का हल ले, पीड़ा से व्यथित, अपने दुःखों को भूला हुआ,

सँसार के सुखों से अनभिज्ञ खेत जोतने जाता है, तो उस समय करुणारस से पूर्ण हमें भारतवर्ष की वर्तमान दीनता का प्रतिरूप देखने में आता है। क्या ही हृदय विदारक दृश्य है ! यदि भारतीय किसान अपनी दुःख कहानी सुनाने में समर्थ होते, तो इस समय हम उस घोर क्रन्दन तथा विलाप को सुनते, जिस पर विचार करते ही कलेजा कांप जाता और नेत्र अश्रु पूर्ण हो जाते हैं। जिस समय किसान इत्यादि अपना दुःख रोना जान जांयगे,' उस समय वे बड़े २ कवियों की कविताओं पर पानी फेर उन्हें लज्जित 'कर देंगे। भारतवर्ष के सच्चे जातीय गीत अभी गाये जाने को हैं। शहरों में दस्तकार तथा देहातों में किसान लोग बड़ी ही दीनता तथा अज्ञानता से बास करते है। उन्हें इस बात का पता भी नहीं कि एकयता तथा समाज संगठन किस चिड़िया का नाम है। उनमें स्वाभिमान की गन्ध मात्र नहीं इन प्राणियों के उद्धार का भार कोई बिरलाही मनुष्य उठा सकता है इस शुभ कार्य्य में तन मन अर्पण करने का सौभाग्य किसी महान् आत्मा ही को प्राप्त हो सकता है। हां, मनुष्य जाति को कार्ति के लिए यह कह देना आवश्यक है कि इन दुःखी दीनजनों की बड़ी काटने वाले प्रायः बड़े ही आदमियों में से उत्पन्न हुए हैं, ऐसे २ पुरुष-रत्नों के प्रम ने जाति पांति के भेदाभेद को नहीं जाना। उन्होंने गरीब गुरबों ही के दुःख से निज दुःख, तथा उनके सुख से निज सुख माना है। ऐसे बहुत ही थोड़े मनुष्य मिलेंगे जो दीन दुःखी जनों के साथ सहानुभूति तथा भ्रातृभाव प्रकट करें। यदि थोड़े लोग हैं भी तो

उन्हें इस शुभ कार्य के लिये स्वयं अपने बन्धुओं द्वारा अपमानित होना पड़ता है। परन्तु जिनकी वे सेवा करते हैं उनके वे उपास्य-देव बन जाते हैं। इन उदार पुरुषों ने इस बात को समझ लिया है कि उनकी विद्या, उनकी बुद्धि, तथा उनका आत्म प्रकाश किसानों ही के उस दान का फल है जिससे बड़े २ कालेज इत्यादि बनते हैं, पर जिससे उनकी सन्तानों को कोई भी लाभ नहीं पहुंचता। ऐसे लोगों ने बड़ी ही कृतज्ञता के साथ इस बात का अनुभव कर लिया है कि उन्हें किसानों का ऋण चुकाना है और इस ऋण के चुकाने की इससे बढ़कर और कोई रीति नहीं, कि वे अपने जीवन को उनकी सेवामें व्यतीत कर देवें। ऐसे लोग अपने स्वार्थरत, काहिल, निकम्मे साथियों से बिलग हो, किसान इत्यादि जैसे उद्यमी पुरुषों के भाग्य में निज भाग्य को मिला देते हैं। याद रखिये, आप इन दुःखित जनों की सेवा स्वयं दीन बनकर कर सकते हैं अन्यथा नहीं। यदि आप किसानों इत्यादि के प्रति कुछ भी उपकार करना चाहते हैं, तो जाइये, और उनके बीच में रहिये। उनके साथ रूखा सूखा भोजन कीजिए, तथा उनके साथ उनकी देहाती बोली बोलिये, उनके बीच बाबू बनकर नहीं बल्कि उनके सहकारी बनकर रहिये। कानफ्रेन्स तथा कांग्रेस के प्लेट फार्मों से उन्हें विद्याभिमान से पूर्ण उपदेश मत दीजिये। उससे किसानों को तनिक भी लाभ न होगा। अपने मलमल तंजेब आदि के वस्त्रों को त्यागिये, और तब जाकर देहातों में काम कीजिये। राजे महाराजे सेठ साहूकार इत्यादि इन लोगों का उद्धार कदापि नहीं कर सकते

यदि आप लोगों में से कुछ ऐसी पवित्र आत्मायें हैं, जो सच्चे पवित्र प्रेम तथा आत्म-त्याग की भूखी हैं तो उनको बड़े आदमियों की सुख-बृद्धि का ध्यान छोड़ किसानों इत्यादि की दुर्दशा पर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि देखिए, बेचारा किसान अपना हल लिए हुए कातर स्वर से आप लोगों के समक्ष पूछ रहा है कि "क्या किसी समय मेरा भी भाग्योदय होगा ?"

—:०:—

आशावाद।

भारतवर्ष [illegible] भविष्य की [illegible] में लटक रहा है। अन्धकार और प्रकाश [illegible] कि [illegible] शताब्दियों तक कब्ज़ा करने के लिए प्रयत्न [illegible]। [illegible] हिन्दु [illegible] उन्नति करेंगे और मनुष्य बनेंगे [illegible] जो [illegible] देश के प्रबन्ध पर विचार करने [illegible] आत्माओं के सन्मुख उपस्थित है। हम बहुधा [illegible] महात्माओं [illegible] सुनते हैं कि भारतीय जाति एक नष्ट-भ्रष्ट हो जानेवाली जाति है। हमारे योग्य हित-चिन्तक विश्वास दिलाते हैं कि प्रकृति को यह मंजूर है कि हिन्दुस्तानियों को अभी कम से कम एक शताब्दी तक अविद्या और दीनता की दशा में रक्खे। हमारे समाज सुधारक बहुत ज़ोर के साथ कहते हैं कि भारत का आर्थिक प्रश्न उस समय तक हल नहीं हो सकता जब तक इनेगिने सुधार कार्यरूप में परिणित न हों। हमारे यहां ऐसे धार्मिक महन्त हैं जो प्रायः

की आर्थिक दशा बढ़ने के पूर्व तुम्हें बहुत बड़े बड़े पड़ाव तय करने पड़ेंगे। ये लोग हिन्दुस्तानियों की योग्यता के बारे में बहुत ही साधारण राय रखते हैं। वे कहते हैं कि हम बहुत ही खुशामदी और गिरे हुए हैं। हम में आचरण नहीं, हम में जोश नहीं, हम में शक्ति नहीं, हम में एकता नहीं, हम निरक्षर भट्टाचार्य हैं। हम एक दूसरे से मिलकर काम करना नहीं जानते. हम में अधिकांश लोग अयोग्य और स्वार्थी हैं। हमारी स्त्रियां पढ़ी लिखी नहीं हैं। हम यूरोप से शताब्दियों पीछे है। देश के प्रबन्ध में हमारी योग्यता और हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है. हमारे मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं। संसार के अन्य देश बहुत शक्तिशाली हैं, उनका महत्व कहीं ज्यादा है। वे अपने उद्देश्यों को पूरा करने में अत्यन्त चतुर हैं। भला, ऐसी दशा में सफलता का होना कैसे सम्भव है? निःसन्देह इन महानुभावों की ये दलीलें—यदि आजकल के वैज्ञानिक रहन-सहन के ढङ्ग पर विचार न करके देखी जायं—बहुत ज़बर्दस्त हैं। किन्तु जिस प्रकार किसी अभागे आदमी के विरुद्ध प्रत्येक आदमी अपनी सम्मति रखता है, ठीक उसी प्रकार हिन्दुस्तान की दशा है। वर्तमान समय की अविद्या और दरिद्रता राष्ट्र की शक्ति को ऐसा कुम्हलाये देती है कि वह भविष्य को देख ही नहीं सकता।

इस कथन से मेरा अभिप्राय यह है कि भारत का आर्थिक प्रश्न इसके पूर्व कि २० वर्ष गुज़रें हल हो जायगा। जो शक्तियां भारत—

वर्ष में काम कर रही हैं उनकी गति को भली भांति समझ लेने के पश्चात मेरा यह दृढ़ मत है, इस मत को मैंने अपनी उमंग से प्रभावित होने नहीं दिया। मैंने केवल समाज शास्त्र के नवीन तरीकों को भारतवर्ष पर चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है और उन्हीं से यह परिणाम निकाला है जिसके कारण समाज सुधारकों को नैराश्यता के विचार मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए। बुद्धि हमें आशा का पाठ पढ़ाती है, हृदय भी उसी ओर संकेत करता है और जब हृदय और मस्तिष्क एक होते हैं तो हमें निराश होने का कोई कारण नहीं।

भारतवर्ष के भविष्य को आच्छादित करने वाले काले बादलों में ऐसी कौनसी रुपहली रेखा है? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए हमें उन तमाम शक्तियों को, जो जीवन को आन्तरिक दशा को प्रगट करती है, देखना चाहिये—और उन्हीं पर वाद-विवाद करना चाहिये।

हिन्दुस्तानी रियासतें।

बहुत से लोग यह भूल जाते हैं कि भारतवर्ष का एक तिहाई हिस्सा देशी राज्यों के अधिकार में है और दो स्वतंत्र रियासतें देश में हैं। रियासतों में हमारी अभिलाषाओं के प्रकट करने में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। वहां पब्लिक-स्प्रिट दिखलाने का काफी मौका है। वहां सामाजिक सङ्गठन की ऐसी गिरी हुई

दशा नहीं है जैसी बृटिश इण्डिया में है। लोग कायर और दास नहीं हैं। उनमें देश का गर्व मौजूद है। त्रिरोचित खेल और व्यायाम वहां भूले नहीं जा चुके हैं। पूर्वीय समाज का प्राकृतिक वायुमण्डल किसी निर्द्धारित सीमा तक स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। रियासतों में जीवन, शक्ति और पुरुषत्व है। दरबारों में सुधार हो रहे हैं। उन्नत-मस्तिष्क शासक उन लोगों के लिए जिन पर वे टेक्स लगाते और शासन करते हैं, अपना कर्तव्य पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। विदेश यात्रा कुछ राजाओं की आंखें खोल चुकी है कि किस तरह उन्नति करनी चाहिए।

सरकारी बिश्वविद्यालय के ग्रेजुएट सरकारी नौकरियों के न पाने पर रियासतों में पहुंच रहे हैं, यह क्रम कुछ समय व्यतीत होने पर उन्नति करेगा। पुराने और अयोग्य मन्त्रियों के न रहने पर सुशिक्षितों को अवसर मिला है कि राजकीय कामों में वे अपनी योग्यता दिखलावें। जब कि ७ करोड़ के लगभग अपने देश-भाई रियासतों में रहते हैं तो मातृ-भूमि के किसी सेवक को निराश नहीं होना चाहिए कि उसके लिए देश-हित साधन का कोई द्वार नहीं है। स्वतन्त्र चित्त के देश सेवा करने वाले लोग रियासतों में बहुत कुछ काम कर सकते हैं। योग्य और न्याय-प्रिय समाचारपत्र सम्पादक सर्वसाधारण में जीवन पैदा कर सकते हैं, ज़िन्दा दिलों को उभार सकते हैं और जनता में सामाजिक शक्ति का संचार कर सकते हैं। जीवन-शून्य बाद विवाद कांग्रेस और बृटिश

हिन्दुस्तान के समाचार पत्र, गुलाम आबादी की लाश में प्राण नहीं फूंक सकते। सार्वजनिक शिक्षा प्रचार से स्वतंत्र राजनैतिक सँस्थाओं को जन्म दिया जा सकता है जिससे राजाओं की हुकूमत कम हो जायगी। ऐसा ही यूरोप में हुआ है और यही हिन्दुस्तान में होगा।

धार्मिक संस्थायें।

ये देश के मामलों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं किन्तु इनमें जीवन और शक्ति है। ये अपने ऊपर शासन करना जानती हैं। ये जानती हैं कि भारतवर्ष उनका देश है और देशभक्ति उनका धर्म है। बस केवल उनके उचित गर्व को काम की ओर झुक जाने भर की देर है। इनकी ज्योति अभी बुझी नहीं है, उसे लपट की भांति प्रकाशमय कर देना चाहिये।

यह विचार करने से दुःख होता है कि धार्मिक सङ्गठन करने वाला भिन्न २ समाजें स्वतंत्र और स्वाधीन जीवन स्थिर रखने में शक्तिहीन हैं—मृत्यु का हाथ उन पर आपहुंचा है। वे दासत्व और कायरता का विष फैला रही हैं। वे धर्म का वर्णन करती हैं, किन्तु भय उनके दिल में है। वे परमात्मा की पूजा के गीत गाती हैं परन्तु अन्याय और अत्याचार की उपासना करती हैं। वे मुक्ति की इच्छा करती हैं किन्तु जञ्जीरों में जकड़ी हैं। उन्हें चाहिए कि प्राचीन सङ्गठन से उपदेश ग्रहण करें।

मध्य श्रेणी के लोगों की उन्नति

पचास वर्ष के समय में मध्य श्रेणी के लोगों की उन्नति आश्चर्यजनक है। यह एक अद्भुत श्रेणी मालूम पड़ती है। इसके जीवन का अवलम्बन सरकारी शासकों की दया पर निर्भर है। यह उन्हीं की निर्माण की हुई है। जब इस श्रेणी के लोग कायर और लालची होजाते हैं तब देश को मटियामेंट कर देते हैं, किन्तु जब उनमें से कुछ लोग भी साहस और जोश दिखलाते हैं तब उन का प्रभाव राजाओं और जमींदारों से कहीं अधिक होता है। इस श्रेणी के लोग देश को बना और बिगाड़ सकते हैं। लक्षणों से मालूम होता है कि वे बिगाड़ने की अपेक्षा देश को सुधारने की ओर हैं। वकीलों के क्लब, कान्फ्रेंसें, छोटी २ सरकारी नौकरियां, भिन्न २ समाजें और कांग्रेस, अधिकारी तंत्र को ढीला किये बिना बाज़ नहीं रह सकतीं। इस श्रेणी के सङ्गठन पर आक्रमण नहीं हो सकता। सरकार स्वयम् इसकी रक्षा करती है। मध्म श्रेणी के लोग ही भारतवर्ष के नेता बनेंगे। इस विषय में राजा लोग भी इच्छुक हैं कि यह श्रेणी उनकी सेवाओं का दम भरे। क्योंकि देश के समाचार पत्र और साहित्य इसके हाथ में हैं। राष्ट्र में एक भीषण परिवर्तन हो रहा है, मार्ग दिखलाने के लिए धन का स्थान मस्तिष्क ले रहा है। भारतवर्ष में जनसाधारण की सेवा करने वाले आजकल के शासक हैं, इनका प्रभाव प्रति वर्ष उन्नति करेगा। बीसवीं शताब्दी का भारत सिक्खों और मरहठों के समय से बिल्कुल भिन्न और निराला होगा।

धनी लोग ।

ये सामाजिक परिवर्तन में काफ़ी भाग नहीं ले सकते। वे तूफान और प्रचण्ड वायु में ठहर नहीं सकते। कायरता उनका स्वाभाविक लक्षण है। ऐसी दशा में यदि इस श्रेणी से नेताओं का चुनाव हो तो यह समाज का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। भूतकाल में इनका चुनाव हमारे पतन का एक मुख्य कारण रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि धन-पात्र पढ़े-लिखों के अच्छे सहायक हैं। किन्तु उन्हें इतने अधिकार दिये जांय कि वे पुराने ढङ्गों को अपने कब्जे में ले आयें और उनकी उन्नति के लिए योजना करें। कारण स्पष्ट है कि वे अपनी मिलकियत की रक्षा का विचार पहले करेंगे तत्पश्चात् जनसाधारण के लाभ की ओर ध्यान देंगे। उचित तो यह है कि ब्राह्मणों को वैश्यों के ऊपर होना चाहिये। मध्यश्रेणी के लोगों की उन्नति किसी दांव पेंच से रुक नहीं सकती, यह हमारे लिए बड़े महत्व का प्रश्न है कि हम इसकी शक्तियों को ठीक मार्ग पर ले आवें।

जनता।

भारतीय मनुष्य साधारणतः बलवान और मर्दाना होते हैं, यद्यपि देश का कुछ भाग शारीरिक दृष्टि से गिरा हुआ है और यह एक अटल सिद्धान्त है कि किसी जाति में शारीरिक क्षीणता का होना उसके मस्तिष्क-पतन का कारण होताहै। बात यही है कि ये लोग देश की उन्नति में अधिक भाग नहीं ले सकते—ये सारी

आवश्यकताओं के लिए व्यर्थ हैं। तथापि बारह करोड़ हिन्दुस्तानी जो मज़बूत और बलवान काश्तकार हैं, संसार की सब से अच्छी जाति के मुक़ाबिले में रक्खे जाने के लायक हैं। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक गिबन के मतानुसार इनकी संख्या सम्पूर्ण रोम-राज्य से अधिक है। ये सादा जीवन व्यतीत करते हैं और बड़े ही शुद्ध आचार-विचार के होते हैं। राष्ट्र के लिए इन गुणों का होना अत्यन्त आवश्यकीय है।

स्त्रियां।

हमारी स्त्रियों में जो जीवन है उसे हम अब तक काम में नहीं ला सके। स्त्रियां पराधीनता की दशा में हैं। किन्तु यदि देखा जाय तो समस्त संसार की स्त्रियों का यही हाल है। इस दृष्टि से पूर्व और पश्चिम में बहुत ही कम अन्तर है। भारतीय स्त्रियां भविष्य के परिवर्तन में काफ़ी हिस्सा लेने के योग्य हैं। वे पति भक्ति-परायणा हैं। इसके अतिरिक्त उनमें अन्य अनेक गुण हैं। आवश्यकता है कि प्रत्येक नवयुवक अपनी स्त्री को देश हित की शिक्षा देने में दृढ़प्रतिज्ञ हो जाये, क्योंकि इस विषय में उनकी एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न।

कुछ लोग हिन्दू मुस्लिम प्रश्न को निराशा की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु मुझे अधिक कठिनाइयां दिखलाई नहीं पड़तीं। पश्चिमी शिक्षा दोनों जातियों के नेताओं को परस्पर एक दूसरे से मिला

देगी और द्वेष की जंजीर को काट देगी। सेंट्रल हिन्दू कालेज और अलीगढ़ कालेज में आचरण का जो सांचा ढल रहा है वह वास्तव में अपने ढङ्ग का एक ही है। एक पण्डित और मुल्ला की अपेक्षा विश्वविद्यालय की उच्च-शिक्षा प्राप्त हिन्दू-मुसलमान ग्रेजुएट एक दूसरे को ज़्यादा समझते हैं। पश्चिमी शिक्षा वह काम कर रही है जो अकबर ने अपने शासन काल में किया था।

इनेगिने लोगों का कहना है कि पश्चिमी शिक्षा ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाड़ी को और भी चौड़ा कर दिया है, द्वेष कम होने की अपेक्षा अधिक बढ़ गया है, किन्तु ये लोग अदूरदर्शी हैं। इन लोगों ने प्रस्तुत विषय पर बहुत ही कम विचार किया है। जो परिणाम इन्होंने निकाल रक्खा है वह बड़ी शीघ्रता के साथ निश्चित किया गया है। इन्हें स्मरण रखना चाहिये कि कुछ स्वार्थी लोगों की आवाज़ समय की बढ़ती हुई शक्ति को रोक नहीं सकती। भंवर और चक्करों का उठना सम्भव है किन्तु पानी का बहाव रुक नहीं सकता। जो शक्ति विद्यार्थियों को, हावर्ड और आक्सफार्ड लिये जाती है वह हैदराबाद और भूपाल में मित्र बना देगी।

दोनों जाति के नेता इस बात को स्वीकार करेंगे कि भविष्य में भारत का सामाजिक और राजनैतिक जीवन आजकल की हिन्दू-मुस्लिम जनता के साधारण जीवन से भिन्न होगा, क्योंकि पश्चिमी सभ्यता बीच के अन्तर को बड़ी तेज़ी से हटा रही है। सर्व

साधारण अपने प्राचीन रीति नीति पर स्थिर रहेंगे परन्तु दोनों जातियों के शिक्षितगण सामाजिक स्थिति और समय की चाल को देखकर दूध चीनी की भांति आपस में मिल जायेंगे। एक मुसलमान बैरिस्टर-एट-ला, हाफ़िज़ और हाजी की किसी बात को नहीं मानता। सच तो यह है कि भारतवर्ष में शिक्षितों की एक नई जाति बन रही है।

बीसवीं शताब्दी की कठिनाइयों की अठारहवीं शताब्दी के भारतवर्ष से तुलना नहीं करनी चाहिए। देश का शिक्षित सम्प्रदाय जो यूरोप और अमेरिका के मध्यश्रेणी के लोगों से मिला हुआ है, क्रम क्रम से स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होगा। जापान की उन्नति का यही रहस्य है। हिन्दुओं में उच्च-जातियां अपनी प्राचीन अन्ध-नीति को मानना छोड़ देंगी और मुसलमानों के नेता अपने कलङ्कों एवम् सामाजिक रूढ़ि नीति पर स्वयम् दिल्लगी उड़ायेंगे, क्योंकि अर्वाचीन विज्ञान का प्रबलभाव प्राचीन रीति-नीति को उड़ा रहा है। एशिया निवासी विद्यार्थी गण अब बग़दाद और बनारस से शिक्षा नहीं लेते, किन्तु बर्लिन, पेरिस और लन्दन से उपदेश ग्रहण करते हैं। ज्योति की किरण जनसाधारण में अपना प्रभाव विना डाले नहीं रह सकती, किन्तु अभी इसके लिए कुछ देरी अवश्य है। इस बीच में हिन्दू-मुसल्मानों को अपनी अन्ध-परम्परा रीति नीति को भूल जाना चाहिये। और मनुष्यता देवी का स्वतन्त्र एवम् सच्चा भक्त होना चाहिए। पश्चिमी शिक्षाका प्रसार बढ़ता जारहाहै। कोई

व्यक्ति आज मनु की स्मृति और इस्लाम की शरीअत को हाथ में लेकर यह नहीं कह सकता कि हम इस मार्ग से उन्नति करेंगे।

भारतवर्ष अपने को एक बन्द पानी का तालाब बना कर और उस में प्राचीन समय के कीड़े-मकोड़े पैदा कर के बीसवीं शताब्दी में उन्नति नहीं कर सकता, उसे समय के साथ चलना होगा। हमारी जाति में जीवन के चिन्ह हैं जिन्हें काम में लाने की आवश्यकता है, और आवश्यकता है इस बात की कि पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण हो। जो लोग भय से काम कर रहे हैं, उनसे मैं कहता हूं कि वह समय दूर नहीं जब कि उनकी अभिलाषायें पूरी हों. किन्तु शर्त यह है कि निराशा की वेदी पर वे अपने को बलिदान न होने दें।

—o—

अप्रत्यक्ष आचरण और साधारण जीवन।

सर्वाङ्ग सुगठित राष्ट्र के लिए साधारण (Public) जीवन एक बहुत ही पवित्र अधिकार है। हमें बड़ी सावधानी के साथ समस्त हानिकारिणी शक्तियों से इसकी रक्षा करनी चाहिए। राजनीतिज्ञों का एक स्कूल भी है जो अप्रत्यक्ष (Private) आचरण को राजनीति से पृथक करता है। वह स्कूल मनुष्य-जीवन को दो बनावटी भागों में विभक्त करता है और उसके अप्रत्यक्ष और साधारण जीवन पर विचार करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके विचार में मनुष्य चेतनता और प्रवीणता की इन पृथक

अवस्थाओं में आचरण के प्रतिकूल स्वतन्त्र रूप से आचरण कर सकता है। वह उन कार्यों का जो व्यक्तिगत अथवा अप्रत्यक्ष हैं, परित्याग कर देगा और हमें केवल राजनीतिज्ञों के साधारण आचरण की ओर देखने को कहेगा। इस तरह वह बड़े महत्व की नैतिक विभिन्नता को फैलाता है। वह धर्म को भी साधारण एवं अप्रत्यक्ष दो भागों में विभक्त करता है। इस प्रकार का विचार यूरोप के मुख्य केन्द्रों के भीतर फैला हुआ है। दुःख की बात है कि हम में से भी बहुत लोग राजनैतिक प्रवीणता को अग्रसर करने के लिए यूरोपीय प्रदेशों के से दोषपूर्ण नियमों को प्रचलित करने में प्रतिष्ठा पा रहे हैं। वे केवल इधर उधर की बातों में भटकते फिरते हैं। सच तो यह है कि उन्हें भारतीयों की आवश्यकताओं का यथेष्ट ज्ञान नहीं।

यह स्पष्ट है कि जो मनुष्य अपने अप्रत्यक्ष नैतिक विचारों में पिछड़ा हुआ है, वह राजनैतिक जीवन में किसी तरह यथेष्ट भाग नहीं ले सकता। उसे युवकों का पथप्रदर्शक या देश का नेता बनने का अधिकार नहीं। वह भारत के नवयुवकों को नष्ट कर डालने वाला होगा। राष्ट्रीयता का पवित्र आन्दोलन झूठे, दगाबाज़ दुराचारी तथा दुष्टों द्वारा नहीं चलाया जा सकता। क्योंकि आन्दोलन में केवल उच्च राजनैतिक विचारों से ही कुछ नहीं होता, वरन् उसमें क्रिया शीलता की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए हम कहते हैं कि हमें सच्चे मनुष्यों की आवश्यकता है, किसी जातिविशेष

अथवा बात बनानेवालों की नहीं। हमारी सभा में झूठे, अनीतिज्ञ, बेईमान मनुष्य को स्थान नहीं मिलना चाहिए, चाहे वह बड़ा भारी राजनीतिज्ञ ही क्यों न हो, चाहे वह बड़े २ व्याख्यान ही क्यों न देता हो और चाहे उसकी नीति हमारी नीति से हज़ार गुणा श्रेष्ठ ही क्यों न हो। यदि उसका आचरण दोषपूर्ण है तो ये सब बातें व्यर्थ हैं। उस मनुष्य का नाम हमारे आन्दोलन की कार्यावली में कभी नहीं पाया जा सकता जिसकी नैतिक अवस्था हीन हो।

उपर्युक्त मूल सिद्धांत को कभी नहीं भूलना चाहिये। अदूरदर्शी तथा कच्चे दिल के मनुष्य, जिन्हें कामों की अपेक्षा बातों ही में अधिक विश्वास है, हमारे सम्प्रदाय के बन्धन को कठोर बतला सकते हैं। परन्तु वास्तव में वह हमारे लिए गौरव की वस्तु हैं। हम को यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि बुरे तथा झूठे मनुष्य के ख्याल में कोई भी पतित जाति उन्नति-शील नहीं बनी, वस्तुतः केवल धर्म ही निर्बलों की रक्षा करता है और उनको बल प्रदान करता है। यदि हम धर्म को छोड़ दें तो यूरोप की शुष्क राजनीति हमें खतरे से नहीं बचा सकती। आधुनिक शिक्षाप्रणाली के रङ्ग में रंगे हुए लोग, जो बुरी तरह से जातीय बन्धन से प्रथक् हो रहे हैं, कहते हैं कि धर्म को दूर रखने ही से जाति का उत्थान हो सकता है। किन्तु, हम लोगों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि प्रशान्त जातीय जीवन की क्षुद्र नीति से किस तरह हम तुच्छ बनते जा रहे हैं।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जीवन संग्राम में सिर्फ नम्रता अथवा उग्रता ही किसी जाति की रक्षा नहीं करती। वास्तव में, भारत के जातीय जीवन के महार्णव में, जिसका प्रवाह शास्त्रोक्त धर्म में परिणित होकर जारी रहता है, ये सब बातें केवल जल-बुद्‌बुद के सदृश हैं। आचरण भी प्रभुता सम्मति से प्रचंड है, इतना ही नहीं, वरन् आचरणहीनता के कारण सम्मति का मूल्य कुछ भी नहीं समझा जाता। भारत गिरा हुआ है, इसका कारण यह नहीं है कि अप्रत्यक्ष तथा राजनैतिक आचरण के विषय में हम लोगों के विचार उच्च नहीं, वरन् यह है कि हम लोगों का हृदय शुष्क है और संसार की चीज़ों की ओर बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी, कर्तव्य को परित्याग करने के लिए विशेष झुक जाता है। भारतीय मस्तिष्क गर्म अथवा नर्म बातों में बड़ी कुशलता पूर्वक तर्क कर सकता है, परन्तु भारतीय हृदय ठण्डा और भारतीय आत्मा अचेतन है। यही वास्तविक रोग है। हमें मस्तिष्कबल की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है आचरण की, जिसकी हम में कमी है। अतएव शांत राजनैतिक विचारों से आचरण की बुराइयों का सुधार नहीं होसकता। एक छटांक धर्म एक मन शुद्ध राजनैतिक फ़िलासफ़ी के बराबर है राष्ट्रीय उन्नति के लिए प्रतिभा, सत्यता और उदारता ये सब गुण हैं और वह मनुष्य, जो इन सब गुणों से विभूषित है, आदर्श देशभक्त है। यद्यपि वह कभी राजनैतिक युद्ध-स्थल में नहीं घुसा है अथवा उसने, इन अनाचारी, बुद्धिमान मनुष्यों के झगड़ो में, जो कहते हैं कि हम भिन्न २

राजनैतिक विचार के हैं—भाग नही लिया है, तथापि कोई हानि नहीं।

अप्रत्यक्ष आचरण मनुष्य की पवित्रता की जांच करनेवाला है। जो मनुष्य अपनी अप्रत्यक्ष बातों में दूसरों से मिथ्या भाषण करता है, वह कदापि सार्वजनिक जीवन में सत्य नहीं बोल सकता। जब वह प्लेटफार्म पर वक्तृतायें देने के लिए खड़ा होता है अथवा प्रेस में भेजने के लिए कोई लेख लिखने बैठता है, उस समय वह कोई नया मनुष्य नहीं बन जाता। वह उसी छद्मवेशी की भांति है जो दिन में नवीन नैतिक वस्त्र को तीन बार बदला करता है। वह मनुष्य नैतिक तथा मानसिक शक्ति का एक खण्ड है, उसकी प्रकृति सर्वोच्च गुणों का सञ्चय नहींहै, वरन् अनेक प्रकार की शक्तियों, विचारों, व्यसनों और स्वभावों तथा कार्यों की खिचड़ी है। यह बात विचार से बहिर्गत है कि जो मनुष्य अपने अप्रत्यक्ष जीवन में प्रतिष्ठा नहीं पाता वह सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित बन सकता है, क्योंकि प्रकृति ऐसी अस्वाभाविकता को सहन नहीं कर सकती। हम लोग ऐसे मनुष्य को, जो आचरणहीन है, प्रतिष्ठा का पात्र नहीं समझते। हम अपने बालकों को, ऐसा समझकर कि वह नेता है, नमस्कार करने अथवा उसके चरणों में बैठने की सम्मति नहीं दे सकते। हमारा प्रयत्न होगा कि हम भावी सन्तानों को उससे दूर रक्खें क्योंकि वह दुष्ट कुटिल और झूठा है। साधारण जीवन चालाकी और तीव्रता के प्रधान अंशों में मनुष्य के उद्गार तथा विचारों की ज्योति है। किसी समाज या

समिति की भांति वे उद्गार और विचार, मानसिक और नैतिक बातों का निर्माण करते हैं। मनुष्य के लिए भिन्न २ अवसरों पर भिन्न २ विचारों और उद्गारों का रखना असम्भव है। इस प्रकार का मनुष्य अभिनेता या नक्क़ाल बन सकता है, किन्तु वह युवकों का पथप्रदर्शक अथवा समाज-सुधारक नहीं बन सकता।

अप्रत्यक्ष आचरण में विचारों का होना अथवा आत्मसंयम दोषों की स्थिति—समाज के उत्तरदायित्व की कमी प्रकट करती है, क्योंकि अप्रत्यक्ष अपराध समाज के प्रति पाप है। वे समाजिक नीति को बड़ी भारी हानि पहुंचाते हैं। वे पाप हमारे पड़ोसी को बड़ा भारी धक्का पहुंचाते हैं। फिर भला. वह मनुष्य जिसके हृदय में सामाजिक ज़िम्मेदारी का पूरा ज्ञान नहीं, किस प्रकार से नवयुवकों को राजनीति सिखाने का भार अपने ऊपर लेसकता है? राजनीतिज्ञ महापुरुष लाखों आत्माओं की शुभचिन्तना में निमग्न रहता है, उसके ऊपर उन सन्तानों की भलाई का भी भार रहता है जिनका अभी इस संसार में प्रादुर्भाव नहीं हुआ। इस दशा में हम लोग राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्र ऐसे मनुष्य के हाथ में, जो सामाजिक ज़िम्मेदारियों से पूर्णतया अनभिज्ञ है, किस प्रकार दे सकते हैं? क्योंकि इसी पर समाज का ह्रास और जाति का पतन निर्भर है।

जब कोई राष्ट्र पतितावस्था से दुर्बल और क्षीण शक्तियों से निवृत्त होकर अज्ञानान्धकार को दूर कर—शारीरिक, मानसिक

और नैतिक शक्तियों के सुसज्जित होकर आलोकपूर्ण स्थल में प्रवेश करता है तब उसके मनुष्य बदल जाते हैं। वे नवीन सत्यता को समझने लगते हैं, वे शुद्ध लक्ष्य और विचारों की ओर अभिमुख होते हैं। उस जाति का हृदय पवित्र और उच्च जीवन को प्रदर्शित करता है। समस्त मानव समुदाय चैतन्यता के उच्च शिखर पर चढ़ जाता है। ऐसा कभी नहीं विश्वास किया जा सकता कि उसके जीवन के केवल एक भाग का, जो राजनैतिक बातों को सूचित करता है, सुधार हुआ है। यह बात प्रकृति के विरुद्ध है। जब हम कहते हैं कि अमुक जाति का पतन हो गया, तो हमारे कहने का भाव यह है कि जिन मनुष्यों से उसका सङ्गठन हुआ है वे स्वार्थी, भीरु और मूर्ख हैं। उन्नतिशील राष्ट्र में आगामी सन्तानें फिर नये सांचे में ढलती हैं—मुमूर्ष हृदयों में पुनर्जीवन का सञ्चार होता है, क्षीण हृदयों में नूतन शक्ति प्रस्फुटित हो उठती हैं, उन हाथों में, जिनमें निर्बल और पतितों के उद्धार करने की शक्ति का ह्रास होगया है फिर से नवीन पौरुष की ज्योति जगमगा उठती है और सामाजिक कार्यों की शक्ति फिर से आविर्भूत होती है। इसके विपरीत जो राष्ट्र अपने गृह जीवन में भ्रष्ट होकर व्यवसाय और राजनीति में श्रेष्ठ बनना चाहे, वस्तुतः जो मनुष्य आपस के कामों में एक दूसरे को धोका देकर फिर भी सार्वजनिक कार्यों में सच्चाई और निर्भीकता पूर्वक काम करने का प्रयत्न करे, उसकी चेष्टा सफल नहीं हो सकती।

केवल राजनैतिक वादाविवाद अथवा राजनैतिक सूत्र किसी

राष्ट्र का उत्थान नहीं कर सकता, क्योंकि राजनीति सिर्फ राष्ट्रयी जीवन का अंश है। राजनैतिक दांव-पेंच मनुष्य को पवित्र, सच्चा या उदार नहीं बना सकते, वे केवल जातीय इच्छा को सूचित करते हैं। वह इच्छा, अन्य शक्तियों—जैसे व्यापार, धर्म, शारीरिक विकाश आदि—के सांचे में ढली हुई है। राजनैतिक कार्य जीवन रूपी वृक्ष का फल है और सदाचार उसकी जड़ है। राजनैतिक कार्य जाति को सदाचार के महान् आदर्श की ओर ले जाने के लिए हमें बाध्य करता है, किन्तु वह नैतिक शक्ति अनेक भिन्न शक्तियों का समूह है। राजनैतिक विचारों का प्रसार सामाजिक तत्वों के शक्तिशाली एवं स्वस्थ होने का चिन्ह है, परन्तु यह ध्यान रखने की बात है कि कार्य सदा कारण की स्थिति में नहीं रहता। राष्ट्रीय जीवन का स्रोत धर्म और विश्वास के स्रोत से विस्मृत किया जाता है। राजनैतिक उन्नति जल का केवल ऊपरी भाग है जो उसकी सतह पर लहराता हुआ झरने के बड़प्पन को दिखलाता है। राजनीति स्वयम्भूत शक्ति नहीं। राजनीति आचार नीति पर निर्भर रहतीहै, और आचारनीति की निपुणताएं राष्ट्रीय जीवन की अन्य शाखाओं पर फैली हुई हैं। गृह आनन्द राजनैतिक शक्ति का एक अत्यन्त आवश्यकीय पदार्थ है। जिस जाति का गार्हस्थ्य-धर्म नष्ट हो गया है, वह संसार में कभी उच्चपद की अधिकारिणी नहीं हो सकती। झूंठी, निन्दक तथा कुटिल जाति संसार की जातियों में उच्च स्थान कदापि नहीं पा सकती। आचार नीति ही जाति की आत्मा है, व्यवसाय, राजनीति साहित्य और

गृह-जीवन उसके अङ्ग हैं। आचारनीति राजनैतिक अङ्ग के संयुक्त विचारों को अनेक प्रकार से प्रकट करने की एकता एवं स्थिरता प्रदान करती है। यदि हम आचारहीन राजनीति का अवलम्बन करेंगे तो हमारी दशा ठीक उसी कुत्ते की भांति होगी, जो जल में अपने ही मुहसे ग्रास का प्रतिबिम्ब देख कर उससे भी बंचित हुआ। आचारहीन राजनीति खाली घड़े के समान है, और वे राजनीतिज्ञ, जिनकी जीवन-परिचर्या अपवित्र और कठोर है, केवल भमाते घड़े के तुल्य हैं। राजनीति राष्ट्रीय कार्य का एक भाग है परन्तु आचारनीति उसका पूरा अंश है। तब ऐसा कौनसा मनुष्य है जो सारी छोड़ आधी के लिये दौड़ेगा? और यदि है भी, तो वह बड़ा भारी मूर्ख और निर्बुद्धि है।

जीवन की प्रत्येक अप्रत्यक्ष निर्बलता मनुष्य की इच्छा में विकार बतलाती है। दुराचारी और झूठा मनुष्य अपने दुर्व्यसनों पर अधिकार नहीं कर सकता। वह अपने नीच स्वभाव का गुलाम है। यही दशा उन लोगों की भी है जो दोष और पाप में लिप्त हैं। उनकी इच्छा उनके कलुषित आत्मा के साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं। तब भला, किस प्रकार एक निर्बल पुरुष राजनैतिक बातों में विश्वसनीय हो सकता है? राजनैतिक मैदान में दौड़नेवालों के लिए प्रबल इच्छा की अत्यन्त आवश्यकता है। क्लेश और कठिनाइयों की झड़ी और आंधी के समय हमारे कार्यकर्ताओं को चट्टान की भांति स्थिर रहना चाहिये। उन्हें अपनी उच्च प्रवृत्तियां

की ओर अपनी इच्छाओं को मोड़ना चाहिये। हमारे राजनैतिक नेताओं को दृढ़, अटल, व्यवस्थित चित्त और चैतन्य होना चाहिये। उन्हें कच्चे धागे की तरह नहीं होना चाहिये जो ज़रा भी दबाव पड़ने पर खण्ड २ हो जाता है। वे अनन्त खण्ड २ हो जायं, पर झुकें नहीं। देश को ऐसे ही मनुष्यों की आवश्यकता हुआ करती है जो समस्त कार्यों में ज्यों के त्यों डटे रहें। गुलाम प्रकृति के मनुष्यों के लिये यह बात कष्टसाध्य है। इसीलिए हम कहते हैं कि जो मनुष्य आचारनीति से विहित है, वह पवित्र एवम् महान् राजनैतिक आन्दोलन के झण्डे को वहन करने अथवा उस पर स्वत्व रखने के सर्वथा अयोग्य है। उदाहरण स्वरूप यदि वह मद्यसेवी है तो नशे के फेर में उस विश्वास का परित्याग कर सकता है जिसका भार उसके ऊपर है। यदि वह दुराचारी है तो अपने पद को एक स्त्री के लिए छोड़ सकता है। यदि वह मिथ्याभाषी है तो किसी मुख्य बात में मिथ्या भाषण कर सकता है, और इस तरह आन्दोलन को बड़ा भारी धक्का पहुँचा सकता है। कोई भी गुप्त बात उसके अन्दर गुप्त नहीं रह सकती। उसकी हानिकारक बातों का शत्रुओं द्वारा अनुकरण हो सकता है और इससे उसकी हानि हो सकती है। ऐसे आदमी का विश्वास नहीं करना चाहिये।

जिस मनुष्य का अप्रत्यक्ष जीवन पवित्र और प्रतिष्ठित नहीं, उसका प्रभाव दूसरों पर कदापि नहीं पड़ सकता। जिस भांति गङ्गाजल मोरी में पड़कर अपनी महिमा खो बैठता है, उसी प्रकार

दुराचारी मनुष्य के मुंह से निकलने पर सत्य भी अपना महत्व खो देता है। कोई भी मनुष्य, उस आदमी से—जिसको वह हीन समझता हो अथवा निर्बलबन्धु समझकर उस पर दया करता हो सच्चाई का पाठ नहीं पढ़ सकता। राजनैतिक शिक्षक को, उस मनुष्य से जिसको वह शिक्षा देता हो, बहुत उच्च नैतिक स्थान पर रहना चाहिये। नैतिक स्थिति का अन्तर—जिस पर शिक्षक और शिष्य ठहरते हैं—शिक्षा का धर्म है। सदाचारशून्य व्यक्ति कितना ही बड़ा लेखक अथवा वक्तृत्व-शक्ती सम्पन्न ही क्यों न हो प्रतिष्ठित एवम् विद्वान् नहीं हो सकता। उसके विचारों का प्रभाव मानव समाज पर नहीं पड़ सकता क्योंकि उसमें शिक्षक का गुण नहीं। सर्वसाधारण उस मनुष्य पर इसलिए विश्वास नहीं कर सकते कि वह नैतिक क्षेत्र में उन्हें आगे बढ़ा नहीं सकता वह व्यक्ति उन सामान्य गुणों से भी, जो दूसरों को प्राप्त हैं, सर्वथा वञ्चित है। उसकी नैतिक बातें लोगों को झूठी और बनावटी प्रतीत होंगी, क्योंकि उसका समस्त आचरण राजनैतिक कौशल से पृथक है। लोग उस पर सन्दिग्ध दृष्टि रखते है। उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं देता। लोग उससे असंतुष्ट रहते है और कहते हैं कि उसमें शिक्षक बनने की योग्यता नहीं, क्योंकि वह आत्मसंयम का अभ्यास नहीं कर सकता। अस्तु, कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की अप्रत्यक्ष निर्बलता उसके राजनैतिक कामों में हानि पहुचाने वाली है। आचरणहीन मनुष्य कारणवश कुछ काल के लिये समाज का नेता बन सकता है,

परन्तु स्थायी रूप से नहीं। यदि कोई काम करना हो अथवा दूसरों के उठाने का भार अपने ऊपर लेना हो तो व्यक्ति विशेष में अच्छे आचरणों का होना उचित है। टूटा हुआ हीरा मूल्यवान नहीं होता फिर तो आचरण उससे अधिक मूल्यवान वस्तु है।

लोग हमें कट्टर धार्मिक कह सकते हैं। वे हमारी नैतिक उत्सुकता पर ठट्टा मार सकते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि संसार के इतिहास में जितने महान् कार्य हुए हैं, वे आत्मसंयमी, धार्मिक तथा ईश्वर से डरनेवालों ही द्वारा हुए हैं। क्रामवेल ने उन आदमियों को जो बात २ में शपथ करनेवाले तथा शराबी थे, अपनी सेना से निकाल बाहर किया। धार्मिकता तथा पवित्रता हो के कारण सिख जाति गौरव के उच्च शिखर पर आसीन थी। राष्ट्रीयता के लिये धार्मिक आराधना ही आभूषण है। राष्ट्रीयता का उच्च और स्नेहास्पद आचरण की सब से पहिले जरूरत है। इस वाक्य से हमारे कहने का यह मतलब नहीं है कि हमे पद २ मे अनुसन्धान करना चाहिये अथवा मनुष्य जाति से घृणा करनी चाहिये, वरन् हमारा उद्देश्य यह है कि समस्त राष्ट्रीय पुरुषों को उत्सुक आत्मा की प्रेरणा करनी चाहिए, जो केवल राजनीतिक कामों में ही नही बल्कि प्रत्येक बात में आत्मदर्शन करता है। एक अच्छे राष्ट्रीय पुरुष को कभी निकृष्ट-पिता, धूर्त-मित्र और बेइमान सौदागर नहीं बनना चाहिये। राष्ट्रीयता यदि बुरे नैतिक भावों से युक्त रहती है तो उसका अपमान होता है।

सरांश, राष्ट्र मन्दिर में माता की सच्ची अभ्यर्थना और उपासना करने के लिए ऐसे भक्तों की आवश्यकता है जो दृढ़ चित्त, आत्मसयमी और सदाचारी हों, जो जीवन को पवित्र समझते हों, सुथरां, आनन्दमय जीवनयात्रा करने के लिए प्रत्येक अवस्था में उद्योगरत हों।

—0—

महात्मा कार्ल मार्क्स

संसार में एक भयानक लहर छाई हुई है! क्यों? अत्याचारों को पैरों तले मसल डालने वाली शक्ति के निर्माण के कारण। अत्याचारों को सहन करते करते श्रमजीवीदल विकल हो उठा, उसने अत्याचारियों से बदला लेने की ठानी और उसने लिया भी। इस शक्तिको कार्य्य रूपमें परिणित करने का श्रीगणेश रूस में हुआ और यह लहर अभी रूस ही में फैली है। इस लहर के मार्ग में बड़ी बड़ी रुकावटें तथा बड़ी २ बाधाएं पड़ रही हैं। इस लहर को रोकने के लिए धनी समुदाय अड़ा खड़ा है, तो भी यह लहर संसार में भीषणता पकड़ती जाती है।

इस शक्ति को नींव डालने में हज़ारों योद्धाओं का बलिदान हुआ, हज़ारों ही वीरों ने इस शक्ति का बढ़ाने की चेष्टाएं कर करके अत्याचार के धधकते हुए कुण्ड में अपने प्राणों की आहुति दी है और हज़ारों होनहार नवयुवकों ने अपने अमूल्य जीवन को

इसकी नींव में खपा दिया। उन वीरों, योद्धाओं तथा महानुभावों के आदि गुरुओं में एक महात्मा कार्ल मार्क्स भी हैं।

महात्मा कार्लमार्क्स ने निर्धनताकी समस्या हल करने ही में अपना समस्त जीवन व्यतीत कर दिया। संसार में सब बुराइयों का कारण दरिद्रता है। यह दरिद्रता ही है जो सभ्यता तथा उन्नति के मार्ग पर एक ऊंचे तथा विशाल शिखर की भांति, अड़ कर बाधा डालती है। निर्धनता दासत्व की जड़ है। निर्धनता के कारण ही मनुष्य के उच्च भावों का विनाश होता है। यह निर्धनता ही है जिसके कारण लाखों लुटेरे दिनरात डाका डाला करते हैं, यह निर्धनता ही है जिसके करण मनुष्य बड़े बड़े पाप कर सकता है और यह निर्धनता ही है जिसके कारण मनुष्य मनुष्य के रक्त से हाथ रङ्गता है। यह विचार महात्मा कार्लमार्क्स के हृदय में सदा हलचल मचाए रहते थे। लोग चोरी क्यों करते हैं? लोग लूट मार क्यों करते हैं? और लोग आत्म-हत्या क्यों करते है? महात्मा कर्लमार्क्स जब कभी इन बातों पर विचार करते थे तभी उनके आगे निर्धनता की भयानक मूर्ति नाचने लगती थी। वे प्रायः यह सोचा करते थे कि सँसार धनी है। संसारमें धन-धान्य की कमी नहीं है। सन्सार उन्नति कर रहा है और नित्य प्रति निर्धनता को दूर करने के नये नये साधन निकाले जाते हैं, तो भी सन्सार निर्धन है। लाखों मनुष्य दिनभर काम करने पर भी भर पेट भोजन नहीं पाते हैं और वे अपने बच्चों तक को नहींपाल सकते हैं। यह क्यों?

महात्मा मार्क्स का हृदय सदा उनसे यह पूछा करता था, वर्तमान यूरोप के लोग दरिद्र क्यों हैं ? वह सदा इन्हीं विचारों में उलझे रहते थे। वह यह देखते थे कि जो मज़दूर अपना जी तोड़ कर मिलों के मालिकों के लिए काम करते हैं वे भूखों मर रहे हैं और जो किसान संसार को भर पेट खाने को अन्न देते ह वेही स्वयम् भर पेट खाने का नहीं पाते। उनको दीनों की दशा देखकर बड़ा दुख होता था और वे हृदय की ज्वाला को केवल आंसुओं द्वारा ही शांत किया करते थे।

संसार उन्नति कर रहा है और साथ ही साथ दरिद्रता भी उन्नति के शिखर पर चढ़ती चली जाती है। भारतीय नवयुवकों का विचार है कि यूरोप धनी है। युरोप और अमेरिका के सभी मनुष्य सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु यह विचार करना उनकी भूल है। वे युरोप और अमेरिका को असली दशा से अनभिज्ञ हैं।

बात यह है कि यूरोप धनी नहीं है वरन् उसके कुछ प्रभु धनी हैं। वे यूरोप के प्रभु हैं और श्रमजीवियों के अन्न-दाता। वे न्यायी तथा दयावान बनते हैं परन्तु हैं वे परलेसिरे के निर्दयी। वे गरीब-परवर हैं, परन्तु दीनों का गला काटना उनका काम है। कैसा अन्धेर है ! वे श्रमजीवी, जो कोयलों को खानों में अपने प्राणों को हाथ पर रखकर दिनरात काम करें—वैसे ही मैले कुचैले और फ़कीर बने रहें और कोयले की कम्पनियों के वे हिस्सेदार लखपती

लखपती से करोड़पती और करोड़पती से अरबपती होते चले जांय, जिन्होंने कि कभी खानों के दर्शन तक नहीं किये और प्रायः यह तक नहीं जानते कि खानें हैं कहाँ? जहां युरोप के वे प्रभु, जो अपना जीवन राजाओं की भांति व्यतीत करते हैं, जलवायु परिवर्तन के लिए सँसार के छोर तक जाते हैं—वहां लाखों श्रमजीवी गन्दी हवा के कारण अपने प्राण तक विसर्जन कर देते हैं। क्या कोई इसका उत्तर दे सकता है कि जबकि समुद्र से मोती निकालने वाले अपनी जान पर खेल कर मोती निकालते हैं तो वे क्यों सदा निर्धन के निर्धन बने रहते हैं? और वे सौदागर, जिन्होंने मोती निकालना तो दूर रहा मोती निकालने वालों के दर्शन तक नहीं किये, उन्हीं मोतियों को बम्बई तथा कलकत्ता में बेंचकर क्यों धनी होजाते हैं? सँसार के काहिल से काहिल मनुष्य क्यों धनी हैं और वह कुली जो सारा दिन बैल की भांति काम करता है क्यों भूखों मरता है? क्या कोई इसका उत्तर दे सकता है? क्या कोई बता सकता है कि वे किसान जो दिनरात कड़ी से कड़ी धूप में और कड़ी से कड़ी शीत में अपना रक्त पानी बनाकर, अन्न उत्पन्न करके, संसार को जीवन दान देते हैं क्यों भूखों मरकर भी कर्ज़ की बेड़ियों में कसते चले जाते हैं। और वे सूद खोरे महाजन, जो दिन भर पैर फैलाये दीनों के काल रूपी बही-खाते भरा करते हैं क्यों धनी होजाते हैं? कैसा अन्याय है! महात्मा मार्क्स का हृदय इन बातों को देखकर सदा जला करता था और उन्होंने इन बुराइयों को दूर करने ही में अपना जीवन बलिदान कर दिया।

महात्मा मार्क्स का जन्म ५ मई सन् १८१८ ई०. को जर्मनी के ट्रीब्स नामक नगर में हुआ था। उनके पिता वकील थे और अपनी यौबनावस्था में यहूदी से ईसाई होगये थे। महात्मा मार्क्स अपने भाइयों में सब से चतुर थे। और उनके पिता को उनसे बड़ी आशा थी। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके मार्क्स ने बर्लिन के विश्व-विद्यालयों में फिलासफी और नीति शास्त्र पढ़ने को प्रवेश किया। मार्क्स को बाल्यावस्था से ही कविता से बड़ा प्रेम था तथा उसने उपन्यास लिखना भी आरम्भ कर दिया था। परँतु उसको शीघ्रही पता लग गया कि उसको कविता तथा उपन्यासों से कुछ लाभ न होगा। उसका ध्यान शीघ्र ही फिलासफी की ओर आकर्षित हुआ और वह दार्शनिक-प्रवर हीगेल को अपना अराध्य-देव समझने लगा और सिद्धांतवादी बन बैठा।

किन्तु उसकी यह सिद्धांत-वादिता उसके पिता को अच्छी न लगी, जैसा कि उसके एक पत्र से साफ़ साफ़ प्रकट होता है जिसको उसने महात्मा मर्क्स को संसार में धन को मुख्य बतलाते हुए लिखा था:—

"विविध प्रकार के दार्शनिक विषयों पर समय व्यतीत करना सरासर मूर्खता है। चिराग़ की रोशनी में बैठ कर व्यर्थ मस्तिष्क बरबाद न करो! विद्या के पीछे पागल न हो जाओ! मैं तुम्हारे बिचारों से अनभिज्ञ हूं, और उस विषय पर तुम अब भी चुप बैठे

हो । मेरा आशय उस सोने (धन) से है जिसका कि मूल्य एक गृहस्थ के लिए जितना है उतना तुम नहीं समझते हो।"

पर कार्ल मार्क्सपर इन वातोंका प्रभाव कुछभी न पड़ा। वह सदा अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहा। उसने रुपये पैसे की कभी परवा नहीं की। उसने दृढ़ निश्चयकर लिया कि मैं धन तथा धनिकों से कुछ भी वास्ता न रखूंगा और अपना समस्त जीवन निर्धनता में व्यतीत करूंगा। पाठक स्वयम् ही अनुमान कर सकते हैं कि उसके माता पिता को इन बातों के पता लगने पर कितना कष्ट हुआ होगा। उनकी सारी अभिलाषायें मिट्टी में मिल गईं। उनको आशा थी कि उनका पुत्र पढ़ लिखकर कमाएगा और धनी बनकर उनको सुखी करेगा। किन्तु उनकी यह आशा केवल आशा मात्र ही रही। उन्हें स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि कार्ल मार्क्स देश निकाले तथा दरिद्रता में जीवन व्यतीत करेगा।

सन् १८४२ में कार्ल मार्क्सने विश्व-विद्यालय की शिक्षा समाप्त करके जेनी नाम की एक सुन्दरी से ब्याह किया जो उसकी बाल्यकाल की मित्र थी। उसका कार्ल मार्क्स से ब्याह करना सरासर अपने को कष्ट पहुंचाना था। क्योंकि वह एक धनी घराने की थी और कार्ल मार्क्स एक निर्धन मनुष्य था। परन्तु जेनी बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। वह सदा मार्क्स के दुःखों में हाथ

घटाती रही। जेनी भी कार्ल मार्क्स की भांति एक वीर रमणी थी और वास्तव में वही कार्ल मार्क्स को देश निकाले और दरिद्रता के समय धैर्य्य देती रही। वह वीर रमणी भी कार्ल मार्क्स की भाँति सदा श्रमजीवियों की शोकजनक अवस्था पर खेद किया करती थी और इन्हीं बुराइयों को दूर करने में उसने अपने दो बच्चे बड़ी धीरता पूर्वक बलिदान कर दिये।

इसके पश्चात कार्ल मार्क्स ने जीवन-निर्वाह के लिये सम्पादकीय विभाग में पैर रक्खा और राजनैतिक विचारों को लेकर उसने एक पत्र निकालना आरम्भ कर दिया। उन दिनों जर्मनी की शासन-प्रणाली बड़ी ही नीच और जघन्य थी। जर्मनी के शासन की बागडोर एक अन्यायी तथा स्वेच्छाचारी राज-तन्त्र सरकार के हाथ में थी, जिसके कि मुखिया प्रशिया के बादशाह थे। जर्मनी के बड़े २ नेता इस शासन-प्रणाली को जड़से उखाड़ देने की तैयारियां कर रहे थे। कार्ल मार्क्स ने भी अपने उच्च विचारों को अपने पत्र 'रेनिश गज़ट' Rhenish Zeitung में प्रकट करके इस आन्दोलन में भाग लिया। उसके इन राजविप्लव-वादी खुल्लमखुल्ला विचारों ने पुलिस का ध्यान शीघ्र ही आकर्षित किया। फल यह हुआ कि पत्र सन् १८४३ में बन्द कर दिया गया। मार्क्स ने पत्र जब्त होने के बाद अपने सहयोगी रयूज़ को लिखा—" राजतन्त्र का पूरा पंजा प्रजा-तन्त्र पर पड़ चुका है और अब राजतन्त्र अपना शिर उठाए संसारके सन्मुख सगर्व खड़ा

है।" इस पर रयूज़ ने उत्तर दिया "जर्मनी के अखबार अधिकारियों तथा स्वयम् सम्राट के दबाये नहीं दब सकते हैं। यदि अखबारी-संसार को प्रजातन्त्र फैलाना है और राजतन्त्र से लड़ना ही है तो वह जर्मनी के बाहर से अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकता है।

मार्क्स को उन फ्रेंच लेखकों के ऊपर बड़ी श्रद्धा हो गयी थी जो सँसारको प्रजा-तन्त्र की शिक्षा देते थे और जो कहते थे कि प्रजातन्त्र ही सँसार के श्रमजीवी दलकी दरिद्रता दूर करने का एक मात्र उपाय है। उसका जी सूखे बिप्लववादी विचारों से उलट गया क्योंकि उसमें मज़दूरों तथा किसानोंकी दरिद्रता दूर करने का कोई भी साधन न था। उसने फ्रान्स के प्रजा-तन्त्र-वादी दलके मन्तव्यों को पढ़ने और समझने की ठानी। इसी कारण उसने स्वतन्त्र विचार वाले मनुष्यों के अड्डे, पेरिस में जाने का विचार किया। पेरिस पहुंचने पर उसके जीवन का नया युग आरम्भ हुआ।

वहां वह 'वरवार्ट' नामक एक विप्लववादी पत्र का सम्पादन करने लगा जो जर्मनी की नीति का सदा खंडन किया करता था। यह देखकर प्रशियन सरकार को फ्राञ्स की सरकार से उस पत्र को बन्द कर देने की प्रार्थना करनी पड़ी। अन्यायी सरकारें एक दूसरों के साथ सदा गहिरा सम्बन्ध रखती हैं। फ्रांस भी उन दिनों एक अन्यायी सरकार के शासन में था। अतः

'वरवार्ट' बन्द कर दिया गया और सन् १८४५ में फ्रान्स के प्रधानमन्त्री मिस्टर गुइज़ो ने मार्क्स को फ्रान्स से निकाल बाहर किया। मार्क्स ने अपनी स्त्री तथा बच्चों को साथ लेकर बेलजियम की शरण ली। वह वहां दूसरे जर्मनों से मिला जो कि उसकी भांति देश-निकाले का दुःख भोग रहे थे। तत्पश्चात् उसने बेलजियम देश के ब्रुसेलस नगर में एक जर्मन श्रमजीवी सभा खोली और वह विप्लववादी पत्र 'ड्यूच ब्रुसेलर जीटंग' का सम्पादन भी करने लगा। उसने वहां पर श्रमजीवियों को साम्यवाद की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। वह फ्रान्स तथा जर्मनी के बड़े बड़े प्रजा-तन्त्रवादी नेताओं से लिखा पढ़ी भी करने लगा। धीरे धीरे उसने ब्रुसेलस में अच्छा प्रभाव जमा लिया। उसने अपनी सभा का सम्बन्ध इंगलैण्ड के जर्मन प्रजा-तन्त्र-वादी दल से जोड़ लिया और अन्त में उसने एक प्रजातन्त्र-वादी दल स्थापित किया जिसने एक घोषणा निकाली जो आजतक कम्यूनियन मेनीफेस्टो (Communion Manifesto) के नाम से प्रसिद्ध है।

कम्यूनियन मेनीफेस्टो २४ फरवरी, सन् १८४८ ई०, को प्रकाशित हुआ और इसी दिन फ्रांस में प्रजातन्त्र की घोषणा भी होगयी। यह देख कर सारा संसार कांप उठा। फ्रांस के बादशाह लुई फ़िलिप पेरिस छोड़ कर भाग गये और राजमन्त्री मिस्टर गुइज़ो को भी, जिन्होंने सन् १८४५ में मार्क्स को देश से निकाल

बाहर किया था, फ्रांस छोड़कर विदेशी राज्यों की शरण लेनी पड़ी। फ्रान्स में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित होगया।

इन्हीं दिनों जर्मनी की सरकार बेलजियन सरकार पर मार्क्स को अपने यहां से निकाल देने के लिये बड़ा ज़ोर डाल रही थी। इधर मार्क्स के कारण बेलजियम देश के श्रमजीवियों में भी प्रजातन्त्र के भाव फैल रहे थे। इसलिए मार्क्सको एक दम बेलजियम छोड़ देने की आज्ञा मिली।

फ्रान्स में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हो चुका था और फ्रांस के लिये उसका मार्ग खुला पड़ा था। फ्रान्सीसी सरकार ने मार्क्स से फ्रान्स लौट आने की प्रार्थना की, जहां एक दिन अत्याचारी सरकार द्वारा उसका सर्वस्व हरण कर लिया गया था। फ्रान्स की सरकार ने मार्क्स को विश्वास दिलाया कि प्रजा उसका हार्दिक स्वागत करेगी। मार्क्स ने प्रार्थना स्वीकार करली। उसने एक बार फ्रान्स में फिर प्रवेश किया और वहां कुछ दिन रहने के बाद वह जर्मनी लौटा। जर्मनी आने पर उसने फिर अपना पुराना राग छेड़ा और न्यू रेनिश गज़ट (Neue Rhenish Zeitung) नामक एक पत्र निकालने लगा। उसकी पहली संख्या, १ ली जून, सन् १८४५, को निकली; जिसमें कि उसके मित्र इंजिल्स ने 'पेरिस में कुछ दिन' नामक लेख लिखा। इस लेख में उसने एक स्थान पर लिखा:—

"प्रजातन्त्र स्थापित होजाने के बाद मार्च और अप्रैल

मास में मुझे पेरिस के फिर दर्शन हुए। मज़दूर लोग दिन में सूखी रोटियां और आलू खा खाकर जीवन निर्वाह करते थे और रात को बृक्षों की छाया में बैठ कर स्वतन्त्रता की बेल सींचा करते थे, गोले बारूद तैयार करते थे और युद्ध के गीत गाया करते थे। परन्तु पेरिस के बड़े बड़े धनी व्यापारी घर में छिपे हुए जनता को अपनी ओर से नम्र बनाने की चेष्टा किया करते थे।"

सन् १८४८ की ग्रीष्म ऋतु में कोलोन में प्रजातन्त्र वादियों की एक कांग्रेस हुई; जिसमें मार्क्स ने बड़ा भाग लिया। एलबर्ट ब्रिसबन नामक एक अमेरिकन साम्यवादी ने भी उस कांग्रेस में भाग लिया था। वह कांग्रेस के समय मार्क्स से मिला था। कुछ दिन बाद उसने उसके सम्बन्ध में कहा था:—

"मैं कांग्रेस में साम्यवादी नेता कार्ल मार्क्स से मिला। मार्क्स के मज़दूर और पूंजी (Labour and Capital) नामक लेख ने उस समय युरोप भर में साम्यवाद की लहर फैलादी थी। वह उन दिनों उन्नति कर रहा था और एक तीस वर्ष का नाटा तथा आरोग्य नवयुवक था। उसके विचार उच्च थे और उसके मुख पर स्वाभिमान की आभा झलकती थी। मार्क्स को पूंजी से घृणा होगई थी। वह उसके नीच लक्ष्यों पर जलता था और वह मज़दूर दल पर उसके प्रभाव को देखकर दुखी होता था। मुझे याद है कि जब उसने प्रचलित राजनीति के विरुद्ध पहिले पहिल कुछ शब्द कहे थे तब मुझे वे बिल्कुल गलत मालूम

हुए थे। मैंने स्वप्न में भी यह विचार न किया था कि उसके सिद्धान्त एक दिन संसार को हिला देंगे।"

जर्मनी का हाथ मार्क्स पर अधिक दिनों तक न रुक सका। ७ फरवरी सन् १८४९ को मार्क्स और उसके दूसरे साथियों पर कुछ कान्स्टेबिलों और एक जल्लाद के सरकारी काम में हस्त-क्षेप करने के अपराध में अभियोग चला। मार्क्स ने अपनी सफ़ाई में एक घंटे तक वक्तृता दी और उस के बयानों से जनता में चारों ओर बड़ी सनसनी फैलगयी। उसकी वक्तृता का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

'केवल जर्मनी ही की अवस्था ने नहीं, वरन प्रशियन सरकार की कार्रवाइयोंने भी, हम लोगों के ऊपर यह भार सौंप दिया है कि हम लोग सरकार के हर एक काम पर निगाह रक्खें और सरकार के ज़रा ज़रा से अनुचित कामों पर भी हस्तक्षेप करें और उनकी सूचना प्रजा को दे दें। जुलाई के मास में हम लोगों को प्रजा को यह बतलाना पड़ा कि तीन निरपराध मनुष्य बन्दी किये गये हैं। अख़बारों का यह कर्तव्य है कि वे निरपराधियों की ओर से लड़ें और उनके झगड़ों को तै करें। महाशयो! दासता के क़िले की नीव इस राजनीति पर निर्भर है जिसका प्रभाव मनुष्य के जीवन पर भी पड़ता है। केवल बड़ी बड़ी शक्तियों से लड़ना ही काफ़ी नहीं है। पत्रों को छोटे छोटे अत्याचारी कर्मचारियों का भी सामना करना चाहिये। मार्च

के विप्लव को किसने उकसाया और उसका क्या परिणाम हुआ ? उसने केवल ऊंची श्रेणी ही का सुधार किया। किन्तु उससे श्रमजीवियों को कुछ लाभ न हुआ। पत्रों का पहिला कर्तव्य यह है कि वे प्रजा के सम्मुख आजकल की राजनैतिक दशा को सुलझा कर रखदें"।

मार्क्स और उसके साथी जूरी द्वारा निरपराधी साबित हुए, इस कारण मज़बूरन छोड़ दिये गये। किन्तु दो ही दिन बाद ९ फरवरी को मार्क्स और उस के साथियों पर फिर राज्य के विरुद्ध लोगों को भड़काने के अपराध पर अभियोग चला। अबकी मामला बेढब था। किन्तु मार्क्स ने फिर एक ओजस्विनी वक्तृता दी। जूरी ने अबकी बार फिर मार्क्स और उस के साथियों को निर्दोष सिद्ध किया और उसने अपने एक सभासद को भी मार्क्स को उसकी ओजस्वनी वक्तृताओं के लिये धन्यवाद देने को भेजा। मई सन् १८४९ में ड्रेसडन और दूसरे राइन प्रान्तों में विप्लव के लक्षण दिखाई देने लगे। अब की बार प्रशियन सरकार ने आंखें खोलीं और मार्क्स को देश निकाले की आज्ञा मिली। केवल यही नहीं किन्तु राजाज्ञा से उसका प्रेस भी जप्त कर लिया गया। पत्र का अन्तिम परचा १६ मई को लाल स्याही से छपा हुआ और 'विदा' नामक एक हृदय हिला देने वाली कविता के साथ निकला।

मार्क्स को फिर अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी और उसने

पेरिस की शरण ली। वहां उस पर जो कुछ बीती वह उसकी स्त्री की डायरी से भली भांति प्रगट होता है। उसकी डायरी का एक भाग यह है—" हम पेरिस में एक मास रहे। किंतु यहां पर भी हम अभागों को रहने का स्थान न मिला। एक सुन्दर प्रभात के समय जब हम लोग बैठे थे हमें यह फरमान मिला—'कार्ल अपनी स्त्री के साथ २४ घंटे में पेरिस छोड़दें'। मैंने फिर अपना थोड़ासा सामान लेकर लंदन में शरण लेने की तैयारी करदी। कार्ल ने हम लोगों के पहिले ही सब तैयारी करली थी।"

मार्क्स जून के अन्तिम सप्ताह में लन्दन पहुंचा। और जुलाई में उसके दूसरे पुत्र हेनरी ने जन्म लिया। मार्क्स के जीवन चरित्र लिखने वाले मिस्टर स्पार्गो का कथन है:—

"जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका जीवन दरिद्रता में व्यतीत हुआ, उसी दरिद्रता में, जो हज़ारों निर्बोध बालकों की मृत्यु का कारण होती है।" नव जात पुत्र हेनरी की मृत्यु सन् १८५२ के आरम्भ ही में होगई। मिस्टर स्पार्गो ने ठीक कहा है—

"यह पहिला ही अवसर था जबकि मृत्यु ने उस दरिद्र परिवार पर कोप-दृष्टि डाली। उसका पंजा बालक के माता पिता को अधिक कष्ट दायक हुआ क्योंकि उनको यह भली भांति मालूम था कि उस बच्चे को, जो उनके रक्त से उत्पन्न हुआ था, केवल दरिद्रता के कारण ही मरना पड़ा।"

अभागा परिवार दरिद्रता के शिखर पर चढ़ रहा था।

नहीं, नहीं, वह नष्ट होरहा था। उसे प्रायः सूखी रोटियों पर ही निर्वाह करना पड़ता था और बाज़ दफ़े मार्क्स को आधा पेट रहकर भी अपने बच्चों का उदर भरना पड़ता था। इस अवस्था में भी, भूख से व्याकुल तथा शीत से ठिठुरते हुए, वह लंदन के बड़े बड़े पुस्तकालयों में जाकर विविधि विषयों का अध्ययन किया करता था। वह लेख लिखता था। किन्तु उसके लेखों का मूल्य बहुत कम मिलता था। कितनी शोचनीय अवस्था थी! एक बार उसने एक रेलवे क्लर्क की जगह के लिये एक प्रार्थना-पत्र दिया। किन्तु वह उसके बुरे लिखने के कारण अस्वीकार कर दिया गया। पाठकों का इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जर्मनी के एक बड़े नेता के लिये क्लर्क होने में भी इतनी बाधायें!

इतनी बाधायें! इतने कष्ट!! और इतना अपमान!!! किन्तु मार्क्स ने कार्य्य-क्षेत्र से पैर नहीं हटाया। वह न्यूयार्क ट्रिब्यून New York Tribune की लंदन की शाखा में लिखा पढ़ी करने के लिये एक पौण्ड प्रति सप्ताह वेतन पर नियुक्त होगया। यही थोड़ा सा वेतन उसका आधार था और महीनों तक यह अभागा परिवार इसी वेतन पर निर्वाह करता रहा। सारा परिवार केवल दो कमरों में जीवन व्यतीत करता था। उन कमरों में एक तो सोने का था और दूसरा रसोंई घरका काम देता था। उसके बड़े बड़े मिलने वाले, जो उससे किसी विषय में राय लेने आते थे, उन्हीं कमरों में मिला करते थे।

उसका जीवन लण्डन में बड़ा हृदय-बिदारक होगया था। हम श्री मती मार्क्स के एक पत्र का कुछ अंश नीचे देते हैं जो उन्हों ने अपनी दशा बताते हुए लिखा था:—

"क्या कोई कह सकता है कि हमने वर्षों जो काम किये उनका कभी वर्णन भी किया? हमारी घरेलू कठिनाइयों तथा दुखों का वर्णन भी किया गया? 'न्यूरेनिश गजट' की राजनैतिक सत्ता तथा अपने मित्रों का मान रखने के लिये उसने (मार्क्स ने) सारा भार अपने ऊपर उठा लिया। उसने सारी सम्पत्ति छोड़ दी और चलते समय उसने सम्पादकों का बेतन तथा और प्रकार के बिलों का भुगतान अपने पास से किया था। वह जबरदस्ती देश से निकाल बाहर किया गया। तुम जानते हो कि मैं अपने लिये कुछ भी न बचा सकी। मैं फ्रैंक फोर्ट, अपना अन्तिम चांदी का गहना, गिरों रखने गई। और सारा असबाब मैं कलोन में बेच चुकी थी। तुम लन्दन और उसकी दशा से भली भांति परिचित हो। उस पर तीन बच्चे और चौथे का जन्म! केवल किराये ही के लिये हम लोगों को ४२ ठेलर प्रति मास देने पड़ते थे। बच्चे को पालने के लिये दाई रखना असम्भव था। इसीलिये पीठ और छाती में पीड़ा होते हुए भी मैंने बच्चे को पाला। किन्तु दीन बालक! उसको दूध न मिलने के कारण अपने जीवन के पहिले ही दिन से बीमार होना पड़ा। एक दिन जबकि मैं बैठी थी एकाएक हमारी घरकी मालकिन घर में घुस आई जिसको हमने जाड़े में किराये के २५० ठेलर दे दिये थे। वह किरा I मांगने

लगा। हम किराया देने में असमर्थ थे। इसीलिये दो कान्स्टेबिल घर में घुस आये और उन्होंने मेरा असबाब, बिछौने, कपड़े, यहां तक कि मेरे बच्चे का पालना, तथा उस छोटी बालिका के खिलौने भी जो कि बगल में खड़ी हुई रो रही थी, सब पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने मुझसे कहा कि दो घण्टो में हम सारी चीजे ले जांयगे। मैं अपने ठिठुरते हुये बच्चों केसाथ खुले हुये फर्श पर पड़ी रही। दूसरे दिन हम लोगों को घर के बाहर निकल जाना था। मेरा पति सारे दिन कमरे ढूंढता रहा। यह सुन कर कि हमारे साथ चार बच्चे हैं, हम लोगों को कोई भी अपना मकान देना स्वीकार न करता था। अन्त में हम लोगों को हमारे एक मित्र ने स्थान दिया। हम लोगों ने अपना बिछौना बेंचकर डाक्टर बावर्ची, बूचर और दूधवाले के बिलों को चुका दिया। अपना सर्वस्व बेंचकर हम लोग इन सबों को कौड़ी कौड़ी चुकाने में समर्थ हो सके। मैं अपने बच्चों के साथ जर्मन होटल, लीसेस्टर स्ट्रीट, लीसेस्टर स्क्वैयर में उठगई। किन्तु यह न समझना कि कष्टों ने हम को कर्म-क्षेत्र से हटा दिया। मैं जानती हूं कि केवल हमी ऐसे अभागे नहीं हैं जो ऐसे कष्ट सहन कर रहे हैं। मुझे प्रसन्नता है कि मैं भी सौभाग्यशालियों में हूं। क्योंकि मेरे प्यारे पति हम लोगों को सहायता देने के लिये अब भी खड़े हैं"।

सन १८५२ की बसन्त ऋतु में इस अभागे परिवार को एक निर्बोध बालिका फ्रांसिसा से, जिसने एक साल पहिले

जन्म लिया था, हाथ धोना पड़ा। उसकी माता की डायरी का एक भाग यहां दिया जाता है:—

"उसी साल, सन् १८५२ के ईस्टर में हमारी अबोध बालिका फ्रान्सिसा की भी मृत्यु हुई। तीन दिन तक दीन बालिका मृत्यु से लड़ती रही। हम लोगों ने अपने तीन जीवित बच्चों के साथ पृथ्वी पर रात काटी। हमारे प्यारे बच्चे की मृत्यु हमारी दरिद्रता के सब से ऊंचे शिखर पर हुई। हमारे जर्मन मित्र हम लोगों को सहायता देने में असमर्थ हुए। अपने हृदय की ज्वाला से व्यथित होकर मैं अपने एक फ्रेंच मित्र के यहां गई, जिसने मेरी बात सुनते ही हम लोगों को दो पौण्ड दे दिये। उन दो पौण्डों से मैंने कफ़न इत्यादि मंगाया जिसमें कि हमारा प्यारा बच्चा आज तक विश्राम कर रहा है!

एक या दो बार मार्क्स ने अपने बच्चों के कष्टों को न देख सकने के कारण काम काज करने को ठानी। किन्तु पत्नी ने सदा उसे कर्म-क्षेत्र से पतित होने से बचाया। उसने सदा मार्क्स को अपने जीवन पर अटल रहने के लिए उत्साहित किया। उसने मार्क्स को इन बाधाओं से हताश न होने देने की हमेशा चेष्टा की। श्रीमती बेडमियर को ११ मार्च सन् १८६१ को उसने एक पत्र लिखा, जिसका कुछ भाग नीचे दिया जाता है—

"लन्दन में हमारे जीवन का पहिला वर्ष बड़ाही भयानक था। किन्तु मैं उन बातों पर आज विचार न करूंगी। हमारी क्षति! और उन बच्चों की विदा, जिनकी मूर्ति सदा मेरे आगे नाचा

करती है ! मैं किसी बात पर विचार न करूंगी। फिर न्यूयार्क ट्रिब्यून से हमारा वेतन आधा करदिया गया। एक बार हम लोगों को अपने खर्च फिर कम करने पड़े और हमें ऋण के भी फन्दों में फंसना पड़ा। अब मैं अपने जीवन के सब से अन्धकार-मय भाग में आती हूं। मेरी लड़कियां अपने निष्कपट तथा निष्छल वर्ताव से हमारे दुःखों को दूर किया करती हैं और सबसे छोटी लड़की मानों घरकी देवी है। मुझ को २० नव० से बड़ी तेज़ी से बुखार चढ़ा और मैंने एक डाक्टर बुलवाया। उसने मेरी भली भांति परिक्षा की और थोड़ी देर तक चुप रहने के पश्चात् वह एकाएक बोल उठा श्रीमती जी मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि आपको चेचक की बीमारी है। बच्चों का शीघ्र ही घरसे बाहर हटा देना चाहिये। तुम विचार कर सकती हो कि इस समय हम लोगों की अवस्था क्या रही होगी। मैं अभी पूर्ण रूपसे आरोग्य भी न हो पाई थी कि मेरे प्यारे मार्क्स पर भी ज्वर का प्रहार हुआ। किन्तु परमेश्वर को धन्यवाद है कि वह ४ सप्ताह बीमार रहने के बाद फिर उठ खड़ा हुआ। मेरी प्यारी सखी, मैं चाहती हूं कि तुम परीक्षा के दिनों में स्थिर रह सको। संसार केवल साहसियों के लिये है ! अपने पति की सदा सहायता करती रहो और अपने कामों में तन मन से सदा तत्पर रहो।"

आपकी—

जेनी मार्क्स

इस पत्र से हम मिसेज़ मार्क्स के साहस का भली भांति अनुमान कर सकते हैं। इस गिरी अवस्था में भी वे सदा प्रसन्न मुख

रहती थीं। इतने दुःख ! इतनी दरिद्रता ! और इतनी शोचनीय अवस्था ! परन्तु मार्क्स ने कभी भी अपनी राजनैतिक वक्तृताओं पर लन्दन के मजदूरों से कुछ भी लेना स्वीकार न किया। वह मजदूरों की आर्थिक अवस्था से भली भांति परिचित था और वह उन दरिद्रों से कुछ लेना पाप समझता था। जर्मनीके मन्त्री प्रिन्स बिस्मार्क ने मार्क्स को अपना प्रभाव जर्मनी में फैलाने के लिये रिशवत देनी चाही, परन्तु मार्क्स ने अस्वीकार कर दिया। प्रिन्स बिस्मार्क ने मार्क्स के पुराने मित्र ब्यूचर को अपनी ओर मिला लिया था। उसने ८ वीं अक्टूबर सन् १८६५ को मार्क्स को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने यह लिखा था—

"स्टेट इंटेलीजेनसर (State Intelligencer) रुपये के भाव को प्रति मास जानना चाहता है। कृपया सूचना दीजिये कि आप इस भार को उठायेंगे या नहीं और इसका पुरस्कार क्या लेंगे।"

मार्क्स ने पत्र पढ़ा और उस पर विचार किया। उसने सोचा कि इस प्रकार एक सरकार से वेतन पाकर काम करने से उसके अनुयायियों का विश्वास उससे उठ जायगा। वह एक सरकारी पत्र के साथ, रुपयों के बाजार का सम्बाददाता बन कर भी, सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था। यद्यपि उसकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी और ऋण के बोझसे उस का सारा परिवार दबा जाता था। किन्तु वह ऐसे काम करनेका कभी भी तैयार न था जिससे उसके उद्देश्यों में कुछ भी बाधा पड़े। इसलिये उसने

इस काम को स्वीकार न किया और इस प्रकार प्रिंस बिस्मार्क का मार्क्स को रिश्वत देकर मिला लेने का प्रयत्न असफल हुआ।

सन् १८६४ में मार्क्स ने अपने साथियों के साथ एक सभा स्थापित की। उसका नाम 'इंटर नेशनल वर्किङ्ग मेन्स एसोसिएशन, Inter national Working Men's Association रक्खा-गया, जोकियोरोप में छः सात वर्षों तक खासा प्रभाव जमाए रही। यह सभा इतिहास में दी इंटर नेशनल The Inter National के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिस के नाम पर ही सारा संसार आज भी मोहित होजाता है। इस सभा की कांग्रेसें भिन्न भिन्न नगरों में होती थीं, जिनमें बड़े २ महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये जाते थे। इसका सबसे अधिक मूल्य श्रमजीवियों में एकता प्रचार करने का है, जिसका फल आज हम बोल्शेविज्म के रूप में देख रहे हैं। महात्मा मार्क्स के इन शब्दों ने—"सब देशों के श्रमजीवियो ! चलो और एकता के सूत्र में बंधो" सारे यूरोप को हिला दिया। टाइम्स का कहना है—"क्रिश्चियनिटी के आरम्भ से लेकर अब तक संसार में किसी ने कभी भी इस प्रकार मजदूरों की जाग्रति नहीं देखी थी। यद्यपि इसके नेता कई सरकारों द्वारा कैद कर लिए गये तो भी इस की शक्ति दिनों दिन बढ़ती ही चली गयी। अन्त में सन् १८७०-७१ के फ्रांस और जर्मनी के युद्ध के कारण इसका प्रभाव टूट गया। क्योंकि इस युद्ध में इसके कई सभासद मृत्यु के ग्रास बन गए और कई डर गये। अन्त में यह सभा सन् १८७६ में पूरी तरह से टूट गई।

कार्ल मार्क्स की लेखन-शैली बड़ी ही ओजस्विनी थी। उसने अपने जीवन में बहुत से लेख तथा ग्रन्थ लिखे। यों तो उसके सभी लेख और पुस्तकें बड़े मूल्य की हैं। किन्तु उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक जिसके कारण उसने संसार में इतनी प्रसिद्ध प्राप्त करली 'डास कैपिटिल' Das Captal है जो कि साम्यवाद की धर्मपुस्तक Bible of Socialism के नाम से प्रसिद्ध है। उस का पहिला भाग मार्क्स के सामने ही प्रकाशित हो गया था। परन्तु दूसरा तथा तीसरा भाग मार्क्स की मृत्यु के बाद उसके मित्र तथा सहकारी फ्रेडरिक इंजिल द्वारा मार्क्स के नोटों के आधार पर पूर्ण किया गया। फ्रेडरिक इञ्जिल मार्क्स का सच्चा भक्त था और उसी के कारण मार्क्स को इंगलैण्ड में जीवन के पहिले भाग में छोटी छोटी कठिनाइयों में चिन्ता न करनी पड़ी।

Das Capital (डास कैपिटेल) नामक पुस्तक स्वयम् ही एक शास्त्र है। मार्क्स को बड़ा दुःख था कि वह अपने जीवन में उसको समाप्त न कर सका। सन् १८८१ में मार्क्स के हृदय में अपनी स्त्री की मृत्यु का बड़ा आघात लगा। १४ मार्च, सन् १८८३, को वह भी हंसते हंसते स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गया। पिछले तेरह वर्षों तक वह सदा बीमारियों का शिकार बना रहा। हद से ज़ियादा काम तथा ख़राब भोजन ने उसका स्वास्थ्य नष्ट कर दिया था। मृत्यु के पश्चात् वह अपनी प्यारी स्त्री के पास 'हाई वे—सिमेट्री' Highway Cemetry में सदा के लिये सुलादिया गया। उसका एक शिष्य कहताहै—उसकी यादगार अब भी विद्यमान है!

वह पत्थरों में नहीं है वरन् वह सच्चे मनुष्यों के हृदयों में है। वह साम्यवाद का जन्मदाता है और प्रत्येक अवसर पर साम्यवादियों की विजय उसके यश को उच्च शिखर पर चढ़ा रही है।

इस प्रकार महात्मा कार्ल मार्क्स के जीवन का अन्त हुआ और संसार के एक बड़े महात्मा की आत्मा दुखों को सहन करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर विश्राम करने को स्वर्ग चली गयी सन् १८१८ से सन् १८८३ तक संसार को एक ज्योति-दान देकर महात्मा मार्क्सने इस असार संसार को छोड़ दिया। उसने संसार को छोड़ दिया। किन्तु उसके बिचारों और उसके भावों ने संसार को नहीं छोड़ा। ससार उसकी पूजा करता है और उसके भावों को हृदय में स्थान देता है। वह आज संसार में नहीं है। किन्तु उसके भाव, बाल्शेविज्म का रूप धारण कर आज सारे संसार में हल चल मचाये हुए हैं। वह चला गया! वह श्रमजीवियों को छोड़ गया—किन्तु उसके भावों ने उनका साथ न छोड़ा। वह धनी समुदाय से घृणा करता था। किन्तु वह उनका कुछ न कर सकता था। परन्तु उसके भावों ने धनिकों का विनाश कर दिया।

मार्क्स के जीवन की तीन समस्यायें थीं और उसने सदा इन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया। उस की पहिली समस्या यह थी कि राज—सत्तात्मक शासन—प्रणाली मनुष्योंकी राजनैतिक, धार्मिक और समाजिक अवस्थाओं के पतन का कारण होती है। मार्क्स ने इसे संसार के आगे रखकर पूर्ण रूपसे सच्चा साबित कर दिया।

मार्क्स की दूसरी समस्या जाति-पांति सम्बन्धी झगड़ों की समस्या (Theory of Class Struggle) थी। इतिहास जाति-पांति सम्बन्धी झगड़ों से भरा पड़ा है और प्राचीन काल में जाति—पांति के झगड़े बड़े बड़े विप्लव के कारण हुए। इन झगड़ों को दूर करना मार्क्स अपना कर्तव्य समझता था और इस कर्तव्य के पालन में उसने कसर नहीं की।

मार्क्स की तीसरी समस्या अधिक लाभ को सुलझाना (Analysis of Surplus value) था। उसने देखा कि पूंजी वाले दीन मज़दूरों तथा किसानों के धन से घर भरते चले जाते हैं। उनकी आय लाखों रुपये है. किन्तु वह आती कहां से है? जो मज़दूर दिन दिन भर काम करने पर भी भर पेट भोजन नहीं पाते, यह आय उन्हीं की हड्डियां गला गला कर आती है!

मार्क्स पहिला मनुष्य था जिसने कि साम्यवाद के भाव मज़दूरों में कूट कूट कर भरना आरम्भ किया। उसका श्रमजीवियों से यह कहना था—“ मज़दूरो और किसानो! एकता के सूत्र में बंधो। जब तक तुम एकता की ज़ञ्जीर में बंधे रहोगे, तुम्हें कोई दल हानि नहीं पहुंचा सकता। तुम्हें संसार को फिर से एक बनाना है।” वर्षों बीत गये। कितनों ही ने संसार में जन्म लिया और कितनों ही ने संसार छोड़ दिया। किन्तु महात्मा मार्क्स की यह आवाज़ संसार में सदा गूंजती रही। यह मार्क्स ऐसे महात्माओं के प्रयत्नों ही का फल है कि साम्यवाद की लहर आज सन्सार को हिलाये दे रही है।

मार्क्स ने अपना जीवन दरिद्रता में व्यतीत किया। किन्तु उसने यह अनुमान कर लिया कि उच्च विचार मैले—कुचैले तथा दरिद्र मनुष्यों के मस्तिष्क ही में वास करते हैं। उसने दरिद्रों को उच्च विचारों के बढ़ाने में सहायता दी और यह एक सबसे बड़ा काम है जो एक नेता दरिद्र-मनुष्यों के साथ कर सकता है। उसने दरिद्रों को उनसे यह कह कर कि "मैं तुम पर बिश्वास करता हूं" अपने ऊपर विश्वास करना सिखाया।

नये युग का आरम्भ हो रहा है और साथ ही साथ पुराने अत्याचारी युग का बिनाश भी। किन्तु यह किन की कृपासे? यह उन्हीं की कृपाओं का फल है जो दिन दिन भर उपवास करके अपना जीवन व्यतीत करते थे, यह उन्हीं की कृपाओं का फल है जो अधिकारियों द्वारा बड़ी निर्दयता से जेल में ठूंस दिये गये अथवा दण्डित हुए और यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल है जिन्होंने कर्म्म-क्षेत्र में अपने प्राण तक बलिदान कर दिये। उन लोगों में एक महात्मा कार्ल मार्क्स भी थे। वे चले गये! संसार को एक ज्योति दिखाकर। संसार को उच्च विचारों से पूरित करके और संसार को अपने भावों से भरके वे सदा के लिये चले गये। वे संसार में नहीं हैं। किन्तु संसार उनके गुणों का वर्णन करता है। वे जो सुखी रह कर भी संसार को सुखी करना चाहते हैं, असफल होते हैं। किन्तु वे जो अपने सुखों को ठुकरा कर ससार को सुखी करना चाहते हैं, सफल होते हैं। यही सांसारिक

नियम है। अतएव संसार का उद्धार करने के लिये उन महात्माओं की आवश्यकता है जो अपने सुखों को तिलांजलि दे सकें।

हिन्दुओं का सामाजिक पतन

अपने शासन को चिरस्थायी बनाना प्रत्येक जाति का मुख्य उद्देश है। इस उद्देश की सिद्ध के लिये सामाजिक विजय का प्राप्त करना अति आवश्यक है। जब एक जाति दूसरी जाति पर राजकीय विजय प्राप्त कर लेती है तब सामाजिक विजय स्वतः शनैः २ प्राप्त हो जाती है। राजकीय बल की वृद्धि सेना की शक्ति और उसके प्रयोग की दक्षता पर निर्भर है। किन्तु सामाजिक विजय का और ही नियम है। उसके मार्ग का आविष्कार धीरे २ होता है। बन्दूकों और शिक्षित सेनाओं से उसे कोई सहायता नहीं मिलती। सिकन्दर (Alexander) और चंगेज़खां ने भी केवल बल से किसी जातिपर सामाजिक विजय में सफलता नहीं पाई। सेना किसी क्षीण जाति के सङ्कुटित शारीरिक बलको अवश्य हानि पहुचा सकती है, बड़े २ दुर्गों को पृथ्वी से मिला सकती है, और विपक्षी की निर्वल सेना को तितर बितर कर सकती है। परन्तु इसकी सहायता से विजयी लोग अपनी प्रजा की आत्मा और मन पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकते। शासक जाति यदि प्रजा पर सामाजिक विजय पाना चाहती है तो उसे खड्ग के महत्व का ध्यान चित से निकाल देना चाहिये। क्योंकि इस कार्य में उसकी सहायता से हानि के सिवा कोई लाभ नहीं।

जो मनुष्य इस बात का मर्म समझते हैं कि एक जाति दूसरी जाति पर किस प्रकार शासन कर सकती है और अपना प्रभुत्व जमा सकती है वे सामाजिक विजय की आवश्यकता को भी शासन के पुष्ट और चिरस्थायी बनाने के लिए भली भांति अनुभव करते हैं।

जब तक किसी देश के निवासी लोभ में पड़कर जात्याभिमान और धार्मिक प्रेम को भुलानहीं देते, तब तक वे अपनी स्वाधीनता—जो मनुष्य का आजन्म अधिकार है—खो नहीं सकते। आत्मबल की क्षीणता के कारण विदेशी शासकों के मार्ग में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। उस व्याधि को अँकुरित देखकर वे उसको बढ़ाने का उद्योग करते हैं। प्रोफ़ेसर सीली (Professor Seeley) का कथन है कि विदेशी शासन आत्म-बल के नाश का मुख्य कारण होता है। वास्तव में आत्म-बल की क्षीणता विदेशी राज्य का कारण और परिणाम दोनों है।

सामाजिक विजय राजकीय विजय का आवश्यक अङ्ग है। उसकी सहायता से पराधीन जातियों का मनुष्यत्व नाश हो जाता है और तब विदेशी राज्य को चिरस्थायी रूप में वह स्वीकार कर लेती है। यदि शताब्दियों तक विदेशी शासन में रहकर भी कोई जाति आत्म-सम्मान और गौरव को जीवित रखती है तो वह अवश्य कभी न कभी अपनी प्राचीन स्वतंत्रता फिर प्राप्त कर लेगी। उस वीर जाति की स्वतंत्र आत्मा कभी न कभी जोश में भर कर संसार की ओर दृष्टि उठाकर देखेगी और अपनी

स्थिति को सम्यक् प्रकार से विचार लेगी। पराधीन मनुष्यों का सब से बड़ा धर्म यह है कि आत्माभिमानरूपी अग्नि की रक्षा यथा शक्ति करें, नहीं तो विदेशी शासन के प्रभाव से वह शनैः २ सर्वदा के लिये शान्त हो जायगी। स्वतंत्र मनुष्यों के स्वच्छन्द विचारों को धीरे २ नाश करके उन्हें दास बना देना विदेशी शासन का सहज और अनिवार्य परिणाम है। जाति के जीवित चिन्हों का नाश होजाना ही उसकी मृत्यु है और जाति को इस प्रकार प्राण-हत कर देना ही सामाजिक विजय का चरम उद्देश है। पतित जाति का शस्त्र अपने जाति-गौरव की रक्षा करना है। विजयी लोग सर्वदा शिक्षा देंगे कि उनकी प्रजा नीच है। उनकी शासन पद्धति को देख कर हमारे हृदयों में भी उनकी बात का प्रभाव पड़ेगा। इससे विदेशी राज्य के कुपरिणामों के सुधारने अथवा उनसे बचने की आशा करने के पहिले अस्वतंत्र जाति को चाहिये कि वह सामाजिक विजय के विरोध का यत्न करे।

राजकीय विजय इस बात को डंका बजाकर घोषणा करता है कि जीती हुई जाति पराजित जाति से चढ़ी बढ़ी है। संग्राम प्रकृति के महा विश्वविद्यालय की परीक्षा है। किसी युद्ध का अन्तिम परिणाम एक या दो मैदानों पर निर्भर नहीं, किन्तु दोनों जातियों की सामाजिक स्थिति पर निर्भर है। सांग्रामिक विजय से केवल बल की महत्ता ही नहीं मालूम होती, किन्तु यह जातिकी महत्ता का भी बड़ा भारी चिन्ह है।

हारी हुई जाति इसको भली भांति समझती है। वह अपनी

आत्मा को डूबी हुई देखती है और सब उद्योगों को निष्फल समझ कर छोंड़ देती है। आशा, धैर्य, आत्मविश्वास सभी शनैः २ उसे परित्याग कर देते हैं। वह अपने को शासक जाति के बराबर नहीं समझती और उसके विचार में यह बैठ जाता है कि दोनों जातियों में बड़ा भारी प्राकृतिक अन्तर है। इस प्रकार सोचते २ वह अपनी आत्मा को निर्बीज कर लेती है। बड़े बड़े अक्षरों में लिखे हुए इतिहास के शब्दों को वह किस तरह भुला सकती है :—"Thou hast fought and failed. Thou hast put forth thy greatest strenght and has been overcome. Thou hast tried to do thy best and that best hast not availed thee"

"तू लड़कर भी संग्राम में हार गई। सम्पूर्ण बलकी आहुति देने पर भी तुझे असफलता प्राप्त हुई। तूने यथा शक्ति कोई बात उठा नहीं रक्खी किन्तु वह भी काम न आई।" ऐसे स्पष्ट वाक्यों से नेत्रों का बन्द कर लेना बेचारी पराजित जाति के लिए कैसे सम्भव है। इन विचारों से जब साहस का नाश होगया तब फिर ऐसी असाहसी जाति से भविष्य में क्या आशा की जा सकती है। जब स्वतंत्रता और स्वगृहाधिकार प्राप्त थे तब तो उसने अपने समाज को जीवित रखने के लिये कोई उद्योग न किया। तो फिर विदेशी शासन के अन्धकारमय दिनों में नियमों की शृंखला में बद्ध होकर पुलिस, गुप्तचर, सेना, छावनी और कारागार इत्यादि के भय से अपने को अधिक कीतिमान बनाने की कैसे आशा कर

सकती है । ये विचार उसकी आत्मा को नाश कर देते हैं ।.

हारी हुई जाति इस प्रकार शासक जाति का महत्व जान लेती है । इसे समझाने के लिए उसे किसी की आवश्यकता नहीं । प्रचीन समय के उसके गौरव की उच्चता के प्रमाण चाहे कितने स्पष्ट रूप से इतिहासों में अङ्कित हों, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण की सत्यता से वह लज्जित हो किसी पर विश्वास नहीं करती । "Seeing is Beleiving" देखना ही विश्वाश करना है । किसीव्यक्ति के मन पर तर्क की अपेक्षा वर्तमान अनुभव अधिक प्रभाव डालता है ।

पतित जाति के नेताओं और हितैषियों के सम्मुख ये बड़ी कठिन समस्यायें हैं:—प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रकृति के ऊपर विजय कैसे प्राप्त हो, जाति-गौरव और आत्म-सम्मान की किस प्रकार रक्षा हो, जाति के थाड़े वहुत शेष आत्मबल की रक्षा किस प्रकार का जाय और फिर उसे उस शिखर तक पहुंचाना जहां तक कि वह पहुच सकती है कैसे सम्भव है ? रोगी आसन्न मृत्यु है । आत्म-बल रूपी रक्त, जो कि असख्य द्रव्य के नाश से भी अधिक भयोत्पादक है निरन्तर निकल रहाहै । क्षति की पूर्ति किस प्रकार की जाय और आत्म-बलरूपी रक्त के निरंतर प्रस्रव का प्रतिरोध किस प्रकार किया जाय ? यही जाति के मनुष्यत्व की क्षीणता है । प्रत्येक जाति सुवर्ण और रत्न इत्यादि के क्षय की पूर्ति सरलता से कर सकती है । किन्तु जो जाति निज गौरव और आत्मा-भिमान को त्याग चुकी है वह सांसारिक वैभव को फिर नहीं प्राप्त कर

सकती। क्योंकि उसने अपना चरित्र, आत्मा और जीवन सभी खा दिया। मृतक मनुष्य जगत के सुख और वैभव के भोक्ता नहीं हो सकते।

सामाजिक विजय आत्म-बल की हीनता को बढ़ाने का एक साधन है। और फिर शासक जाति को प्रतिदिन के व्यवहार में अपनी अस्वतंत्र प्रजा पर अपना सामाजिक महत्व दर्शाने का अवसर मिलता है। यदि वे केवल शासन करना, कर वसूल करना, नियम बनाना और उन में परिवर्तन करना इत्यादि को ही अपना कार्य समझते हैं तो वे प्रजा के चिरस्थायी स्वामी नहीं हो सकते। अपनी स्थिति को पुष्ट करने और अपने को वास्तविक शासक बनाने के लिये आधिपत्य के अतिरिक्त और भी कुछ आवश्यक है। राज्य खड्ग द्वारा प्राप्त किया जाता है। किन्तु उसकी रक्षा करने और उसे चिरस्थायी बनाने के लिये औरही बातों की सहायता लेनी पड़ती है। तलवार के स्थान में अन्यान्य अधिक शक्तिशाली शस्त्र प्रयोग में लाये जाते है। ये प्रत्यक्ष में इतने कठोर नहीं मालूम होते। किन्तु जाति के निर्मूल करने के लिए ये कठोर से कठोर शस्त्रों से भी तीक्ष्णतर हैं। शस्त्र केवल विजय प्राप्त करने में सहायता देते हैं। किन्तु जाति का नाश करना उनकी शक्ति के परे है। वे भौतिक शरीर को वध कर सकते हैं किन्तु आत्मा को मार नहीं सकते। सारांश यह कि राजकीय विजय जाति को शृङ्खलित कर सकती है, किन्तु उसे नम्र नहीं बना सकती। यह बात केवल सामाजिक विजय से प्राप्त हो

सकती है। यह एक महान कार्य है। भारतवर्ष के इतिहास में इसका एक अत्यन्त सरल उदाहरण पाया जाता है।

यह कहा जाता है कि दक्षिण भारत के पारिया लोग प्राचीन जाति की सन्तान हैं जिसे आर्य लोगों ने परास्त किया था। यह भी स्पष्ट है कि दक्षिण में बसने वाले आर्यों की संख्या अनार्य लोगों की अपेक्षा कहीं न्यून है। आर्य लोग बड़े बीर थे; उनमें सामाजिक बीरता थी और उनके पास अच्छे अच्छे शस्त्र भी थे। दक्षिण में आक्रमण कर उन्होंने काले नायकों का परास्त किया। वे संग्राम की रीतियों से अविज्ञ और मूर्ख थे, स्वार्थ साधन के लिये कभी कभी शत्रुओं की ओर भी जा मिलते थे। संख्या में न्यून होने पर भी आत्मिक और शारीरिक बल की श्रेष्ठता के कारण एक जाति ने दूसरी जाति पर आधिपत्य प्राप्त किया। किन्तु ब्राह्मणों के सम्मुख पारिया लोग मार्ग में शाष्टाङ्ग-प्रणाम क्यों करते हैं और जब ब्राह्मण उनके निकट जाता है तब वे अपनी नीचता दर्शा कर तुरन्त उठकर क्यों अलग खड़े हो जाते हैं? ऐसा कोई क़ानून भी नहीं है कि जिसके कारण पारियों के लिए इस प्रकार की हीनता दिखलाना आवश्यक हो। यदि वे उस जातिके प्रतिनिधिको, जिसने उन्हें परास्त किया है प्रणाम न करें और अपनी हीनता स्वीकार न करें तो उन्हें ब्रिटिश न्यायालय द्वारा कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। ब्राह्मण को एक पारिया बड़ी सरलता से युद्ध में परास्त कर सकता है। किन्तु तो भी यह एक बड़ा अद्भुत और आश्चर्यजनक दृश्य जान पड़ता है जब सैकड़ों पारिया जो देखने

में बड़े हृष्ट पुष्ट मालूम होते हैं. एक दरिद्र और निर्बल ब्राह्मण के सम्मुख मार्ग में झुक झुक कर प्रमाण करते हैं। यद्यपि वे ऐसा करने के लिए इस बीसवीं शताब्दी में किसी नियम से बद्ध नहीं हैं। पारिया लोग यदि चाहें तो मिल कर ब्राह्मण देवता की मरम्मत करदें। क्योंकि ब्राह्मण किसी प्रकार से उनकी धृष्टता का दण्ड नहीं दे सकते। परन्तु पारिया लोग ऐसा नहीं करते। वे अब भी, जब उनको किसी बात का भय नहीं है, ब्राह्मणों का महत्व अस्वीकार करने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं। पारिया समुदाय एक ऐसे व्यक्ति को प्रणाम करता है जो नाम में नहीं किन्तु वास्तव में अवश्य शद्र है। इसका क्या कारण है ? यह हम लोगों के सम्मुख एक कठिन प्रश्न है। सर हेनरी काटन के निम्न लिखित उदाहरण से इस प्रश्न के समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। उनका कथन है—(New India page 141—142, 1st Edition)

"जब मैं पहिले पहिल भरतवर्ष में आया तब एक बार एक ब्राह्मण सेवक के साथ सायङ्काल घूमने निकला। हम लोगों को जितने हिन्दू मिले उन्हों ने मुझे इस प्रकार से प्रणाम किया जैसे काई अपने अफ़सर के प्रति करे, किन्तु मेरे साथी के सामने वे पृथ्वी पर गिर गिर कर अपना मस्तक रगड़ते थे। ब्राह्मण से प्रणाम करने की इच्छा उनके हृदय में बड़ी प्रबल थी। मेरे लिये वे केवल कृत्रिम व्यापार दर्शाते थे। प्रत्यक्ष में हम लोगों की स्थिति में इतना अन्तर होने पर भी सामाजिक स्थिति के प्रभाव से वे लोग

मेरी अपेक्षा मेरे सेवक को बड़ा समझते थे। इस दृष्टान्त से चित्त पर बड़ा असर पड़ा। "

सर हेनरी काटन को अवश्य मालूम हुआ होगा कि वास्तव में शासन करने वाले वह नहीं थे किन्तु ब्राह्मण था। वह केवल अफ़सर थे किन्तु ब्राह्मण प्रजा के मन का स्वामी था। ब्राह्मण की स्थिति पुष्ट थी। उसका प्रभुत्व सरलता से नहीं डिगाया जासकता। सर हेनरी काटन को ब्राह्मण की उस अवस्था पर द्वेष अवश्य उत्पन्न हुआ होगा। क्योंकि वह एक अल्प वेतन पर काम करने वाला सेवक मात्र था।

अब हम को यह बतलाना है कि प्राचीन काल में ब्राह्मणों ने किस प्रकार अपना प्रभुत्व सर्वदा के लिये स्थापितकर दिया। यदि भारतवर्ष के लिये ब्रिटिश सरकार की आधुनिक नीति के तत्व को हम जानना चाहते हैं तो हमें उन ब्राह्मणों के कार्यों को अवश्य समझना चाहिये। इतिहास में वही बातें एक बार फिर लिखी जायेंगी। सहस्रों वर्ष पूर्व वाली हमारी बुद्धि हमारे ही ऊपर दूसरी जाति द्वारा आज प्रयोग की जाती है। यह स्पष्ट है कि सामाजिक विजय की पूर्ति के लिये बल की आवश्यकता नहीं, उसके प्रयोग से इसे कुछ भी सहायता नहीं मिलती। यह कार्य अधिकतर बुद्धि, सन्तोष, आत्मसाधन और दूरदर्शिता से पूरा होता है। सामाजिक और संग्रामिक विजय की प्रणाली में बड़ा अन्तर है। सामाजिक विजय कहीं अधिक कठिन है, एक या दो मुठभेड़ों से इसकी

सफलता सम्भव नहीं। इसके विपक्षी लोगों को लक्ष्य का ताड़ना बिलकुल असम्भव है। यह वह बूटी है जिसे पराधीन जाति खाकर घोर निद्रा में पड़ जाती है। यह धीरे धीरे अचेत कर देने वाला महान विष है। यद्यपि यह तत्क्षण नाश नहीं होता तथापि जाति की आत्मा निर्बल करदेता है।

सामाजिक विजय के लिए इन तीन बातों की आवश्यकता होती है:—

(१) प्रजा के सब सामाजिक आन्दोलनों को अपने बश में कर लेना खास कर उन संस्थाओं को जिन पर सामाजिक जीवन निर्भर है।

(२) एकही प्लेटफार्म पर जहां शासक और प्रजा दोनों सम्मलित हों, विशमता दर्शाना ।

(३) प्रजा में से इस प्रकार के मनुष्यों का एक दल तैयार करना जो शासकों के साथ इस प्लेटफ़ार्म पर सम्मिलित हो और वहां अपनी हीनता स्वीकार करे।

ये तीन बातें यदि सिद्ध होगईं तो समझना चाहिये कि शासक जाति को अपने कार्य में सफलता प्राप्त हो गई। प्राचीन काल के ब्राह्मण दूसरों को अपनी इच्छानुसार नम्र बनाने में बड़े दक्ष थे। आत्मवश करने के पूर्व ही वे विदेशियों को नम्र बना सकते थे। अब देखिये उन्हों ने किस प्रकार अपना कार्य सिद्ध किया। उन्हों ने पहले प्रजाकी सब संस्थाओं को स्वाधीन कर लिया और फिर सबको पढ़ाया और उनके गुरू बने। औषध करने

की विधि भी केवल ब्राह्मण ही यथार्थ में समझते थे। अतः ये वैद्य भी बने। जब कोई मनुष्य रोगग्रस्त होता तब वह ब्राह्मण ही का स्मरण करता था और उसीकी प्रसंशा उसके मुख से सुनाई पड़ती थी। धीरे धीरे पुरोहिती और मन्त्रित्व इत्यादि सभी उच्च कार्य ब्राह्मण करने लगे। ब्राह्मणों के बिना किसी का पाणिग्रहण अथवा मातृपिण्ड की दाह क्रिया कुछ भी नहीं हो सकती थी। ज्योतिषविद्या के ज्ञाता भी केवल ब्राह्मणही थे उनके बिना पूंछे कोई यह भी नहीं जानता था कि आज महीने का कौनसा दिन है इस प्रकार से सब सामाजिक व्यवसाय उनके वश में आगये। उनके बिना कोई कुछ काम नहीं कर सकता था। जीवन के सभी कार्यों में उनकी सहायता आवश्यकीय थी। विद्या ही बल है (Knowledge is power) इस बात की सत्यता को ब्राह्मणों ने अच्छी तरह समझा था।

शनैः शनैः पुरोहित, गुरू, वैद्य, नैयायिक और तत्वज्ञानी इत्यादि सभी ब्राह्मण ही बन बैठे। उन्हीं को लोग समाज में कुछ कर दिखाने वाला समझते थे। जिस प्रकार मस्तिष्क शरीर का सर्वोत्तम अङ्ग है और शेष अवयव उसी के बिचारानुसार काम करते हैं उसी तरह ब्राह्मण भी समाज के मस्तिष्क बन गये।

जनता पर राज्य करने के लिए ब्राह्मणोंको सेना की अवश्यकता न थी। क्योंकि लोग ब्राह्मणों के प्रति नम्रता की मात्रा बढ़ाते २ अपने को दासवत् समझने लगे थे। वे इस बात को बिलकुल भूल गये थे कि ब्राह्मणों ने किस प्रकार उस स्थान में आकर उनके

पूर्वजों को पराजय किया था। ब्राह्मणों का प्रभुत्व सब के चित्त में जम गया। ब्राह्मणों से स्थानच्युत किये हुए पुराने सामाजिक नेताओं को लोग भूल गये। उनके पुत्र और पौत्रों को ब्राह्मणों का आधिपत्य मानना पड़ा। ब्राह्मणों की बुद्धिमत्ता, उदारता और पूजनीयता का ध्यान करके उनका सेवक बनने में पारिया लोग अपना बड़ा मान समझते थे। इस प्रकार पारिया जाति का गौरव स्वतः क्षीण होगया और अन्त में समय की परिवर्तनशीलता के कारण धीरे २ नाश हो गया। ब्राह्मणों की धूम मच गई। वे सबको अपनी विद्या सिखाने लगे और धार्मिक नियमों का उपदेश देने लगे। जातीय स्वतन्त्रता का विचार प्रजा के हृदयों से उन्होंने बिलकुल निकाल दिया। इस प्रकार शत्रु जाति के बालक ब्राह्मणों के शिष्य हो गये और उनकी शरण में आगये विजयी ब्राह्मणों ने सरलता से अपने को इन शरणागत रोगियों का स्वामी और नेता बना लिया। इस प्रकार सामाजिक विजय पूणरूप से प्राप्त हो गई और पारिया जाति पर ब्राह्मणों का शासन सर्वदा के लिये स्थापित हो गया।

सफलता के दो अन्य अङ्गों के कारण ब्राह्मणों को अपने कार्य में बहुत सहायता मिली। उन्होंने कथा पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। कथा के सुनने वालों को वे पारतोषिक या प्रसाद देते थे। जो मनुष्य वहां कथा सुनने न जाते थे ब्राह्मण लोग उनका आदर नहीं करते थे। धीरे २ ब्राह्मणों ने वह प्लेटफार्म भी तैयार किया जहां दोनों जातियां असमानता दर्शाने के लिए सम्मिलित हों।

इस प्रकार उन्होंने पूर्णरूप से सामाजिक विजय प्राप्त करली।

वर्तमान कठिनाइयों को पार करने के लिये हमें अपने पूर्वजों की बुद्धि का अवलम्बन करना पड़ेगा। बलवान होने के कारण उन्होंने विपक्षियों पर ये खेल खेले थे। किन्तु हम लोग निर्बल हैं। अतः आत्मरक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य कर्तव्य है। अतएव यह देखना चाहिए कि ब्रिटिश लोग हिन्दुओं पर किस प्रकार सामाजिक विजय प्राप्त करने का यत्न कर रहे हैं। उनकी सहायता के लिए उक्त तीनों बातें उपस्थित हैं।

(१) सब आन्दोलनों को वश में कर लेना-शिक्षा के लिये साधारण स्कूल और कालेज, मेडिकल कालेज, कानून के कालेज, औषधालय, डाकघर, रेल, तार आदि।

(२) एक ऐसे प्लेटफार्मका उपस्थित करना जिसमें शासक और शासित जातियां सामाजिक असमानता दर्शानेके लिए एकत्रित हों। लेजिस्लेटिव कौंसिल, दर्बार, कचहरी, म्युनीसिपेल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि।

(३) इस प्रकार के मनुष्यों का एक दल उत्पन्न करना जो सामाजिक विषयों में असमानता स्वीकार करने के लिए तत्पर हों-

अङ्गरेज़ी पढ़े हुए व्यक्ति, मेम्बर, दरबारी आदि।

इससे यह ज्ञात होता है कि यन्त्र तो पूरा उपस्थित है। किन्तु यह देखना चाहिए कि इसका कार्य कैसे होता है।

(१) ब्रिटिश लोगोंने सामाजिक विजय की पूर्णता के लिए हिन्दू समाज के सभी आन्दोलनों के नेतृत्व अपने हांथ में ले लेने अथवा उनपर प्रभाव डालने का यत्न करना आरम्भ कर दिया है।

शिक्षा-उन्हों ने स्कूल और कालेजों को स्थापित किया है जहां हमारे बालक उनसे साहित्य, विज्ञान और दर्शन इत्यादि पढ़ने जाते हैं। अङ्गरेज़ों के आने के समय जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। वह धीरे धीरे नाश होगई। ब्राह्मणों के हाथों में होने के कारण उससे उनका कोई कार्य न सिद्ध होता था और फिर उससे स्वजातीय विद्या और इतिहास का भी ज्ञान होता था; जिसके कारण जाति के आत्मत्व का ध्यान सभी बालकों में उपस्थित रहता था। प्राचीन शिक्षा प्रणाली गुरुका स्थान ब्राह्मणोंको प्रदान करतीथी। किन्तु ब्रिटिश लोग उस स्थानको स्वयम् चाहतेथे। एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकती हैं। इस शिक्षा विभाग के संसार में भी दो दलों के लोग राज्य नहीं कर सकते। इस लिये ब्राह्मण शनैः शनैः अपने स्थान से हटते जाते हैं और ब्रिटिश लोग उनके स्थान में पहुंचते जाते हैं।

औषध विभाग—डाक्टरी के मुकाबले में आयुर्वेद को नीचा स्थान दिया जाता है। सन् १८३१ ई० की पब्लिक इन्स्ट्रकशन रिपोर्ट बड़ी प्रसन्नता से लिखती है कि युरोपीय डाक्टरी आयुर्वेद को धीरे धीरे हटा रही है।

प्रत्येक नगर में एक सिविल सर्जन रहता है। वह अपने को सब से गुणी समझता है और हममें से कुछ लोग उसकी बात को सच

मान लेते हैं। बहुत से हिन्दू एसिस्टेंट सर्जन उसके शिष्य हैं। जब उनको कोई कठिनाई पड़ती है तब वे उसी के पास पूछने जाते हैं। अस्पतालों का चलाना उसी का काम है। रोगियों को वह सब से बड़ा वैद्य समझ पड़ता है। और भी कोई डाक्टर यदि किसी को अच्छा करते हैं तो भी प्रशंसा उसी की होती है। क्योंकि वे तो केवल उसके शिष्य समझे जाते हैं। धीरे २ हिन्दू विद्वान् वैद्यों की संख्या कम होती जाती है।

धर्म-हम लोगों का धर्म ही केवल विदेशी प्रभाव से अभी तक बचा है, और यही हम लोगों का अन्तिम आश्रय है। सामाजिक विजय के सब अच्छे अङ्गों को ब्रिटिश लोगों ने अपने अधीन कर लिया है। किन्तु धर्म अभी विदेशी पञ्जे में नहीं आया। हां यह अवश्य है कि उसको भी विजय करने के लिये सफरमैना की पल्टन प्रस्थान कर चुकी है। यह दो प्रकार का काम करती है।

(अ) 'वहिरंग से हिन्दू जाति का नाश करना—सरकार सब मतमतान्तरों के साथ समानता का व्यवहार करती है। किन्तु हिन्दू जाति अपने मत को छोड़ने पर शीघ्रता के साथ तत्पर नहीं होती। अतः उसे अवश्य दुःख उठाना पड़ेगा। हम लोग दूसरे मत वालों को अपनी जाति में नहीं मिला सकते। किन्तु सरकार ईसाई मतको आज्ञा देती है कि वे हमारे बालकों को ईसाई बना लें। इन हालतों में हम लोग समानता के आधार पर नहीं लड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार की स्थापित शिक्षा प्रणाली से हिन्दू धर्म की नींव निर्बल होती जाती है। इस परिणाम को

आधुनिक शिक्षा प्रणाली के स्थापक ब्रिटिश लोग पहिले से समझते थे। बम्बई प्रान्त के पहिले गवर्नर माउंट स्टूअर्ट एलफिंस्टन् ने सन् १८२३ में लिखा था:—

"शासकों और शासितों में पूर्ण पृथकता होने के कारण हम लोगों की गवर्नमेंट दृढ़ नींव पर स्थित नहीं। इसके अतिरिक्त भारत के निवासी अपने धर्म के बड़े पक्के हैं, उन्हें अपने धर्म का बहुत ख्याल रहता है; ज़रा २ सी बातों में वे अपने धर्म का अड़ङ्गा लगा देते हैं और उन्हें सदा इस बात का भय बना रहता है कि ऐसा न हो कि कहीं हमारा धर्म चला जाय। इस कारण हम लोग (अङ्गरेज़) सदा ख़तरे में रहते हैं। परन्तु इस ख़तरे को किसी न किसी उपाय से दूर करनाही चाहिये। मेरी सम्मति में इसका एक मात्र उपाय यही है कि युक्तिपूर्ण लौकिक (अर्थात् अधार्मिक) शिक्षा के द्वारा हम लोगों को अपने सिद्धान्तों तथा विचारों का प्रचार इन लोगों में कर देना चाहिए और इनके चिरपोषित संस्कारों को मिटा देना चाहिए।"

इसी प्रकार के और बड़े २ अफ्सरों की सम्मति इस विषय में लिखी जा सकती है। जिससे सिद्ध होता है कि सरकार ने स्कूल और कालेजों को स्थापित करते समय हिन्दू जातिकी उन्नति अथवा अवनति का बिलकुल ध्यान न दिया था। सन् १८५३ में सर चार्ल्स ट्रवेलियन ने हाउस आफ़ लार्ड में गवाही देते समय कहा था:—

"हम लोग जो कुछ कर रहे हैं वह प्राचीन हिन्दू धर्मावलम्बियों के प्रति निरर्थक अड़ङ्गा की लड़ाई नहीं है किन्तु हम उन्हें एक ऐसी

कुञ्जी दे रहे हैं जिससे वे उच्च विद्या का भण्डार अपने लिये खोल सकते हैं। इसका प्रथम परिणाम यह होगा कि प्राचीन प्रणाली का प्रभाव उनके चित्त से बिलकुल नाश हो जायगा। अधिकांश में हिन्दू लोग उसे जानते भी नहीं। इस बात की सत्यता में कुछ भी सन्देह नहीं कि इस समय के बालक कुछ ही वर्षों में भावी जाति का रूप धारण कर लेंगे। यदि जाति के चरित्र में हम लोग किसी प्रकार का प्रभावशाली परिवर्तन करना चाहते हैं तो हमें बालकों पर ध्यान देना चाहिए और उनको जिस मार्ग में हम चलाना चाहते हैं उसी प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए। तभी हमारे धन का व्यय पूर्ण रूप से सार्थक होगा। उस समय हमें उनके कुसंस्कारों से विरोध करने की कोई आवश्यकता न रहेगी। तब हमें नर्म विचार वाले लोगों से व्यवहार करना पड़ेगा। धीरे २ हम लोग ऐसे प्रभावशाली और बुद्धिमान् नवयुवकों की संख्या तैयार कर लेंगे जो कुछ वर्षों के पश्चात् हमारी प्रणाली के प्रचलित करने का कार्य स्वयम् करने लगेंगे और हमारी सहायता की उनको बहुत कम या बिलकुल ही आवश्यकता न पड़ेगी।"

(ब) 'हिन्दू धर्म का अन्तरङ्ग से बहिर्भूत करना'—अधिक समय नहीं हुआ कि कतिपय अङ्गरेज युवक और युवतियां हिन्दू धर्म के पवित्र प्रचारक बन कर हिन्दुस्तान में आ बसी हैं। हमारे पवित्र शास्त्रों की ये शिक्षा देते हैं और हमारे धर्म पर बड़ा प्रेम दिखाते हैं। उनमें से बहुतों को सरकार से सहायता भी मिलती है।

क्योंकि वे एतद्देशीय राजाओं के पास जाकर घण्टों तक एकान्त में बातचीत कर सकतेहैं। एक अङ्गरेजी महिला जिसका पता ठिकाना कोई नहीं जानता है, किस प्रकार से हमारे राजाओं की बिश्वास पात्री और मन्त्रदात्री हो सकती है यदि हमारी सरकार को उस पर किसी प्रकार का सन्देह हो।

अब देखिये कि किस प्रकारसे एक अङ्गरेज स्त्री हिन्दू धर्मधुरन्धरों और काशी के सुप्रसिद्ध पण्डितों की सभानेत्री बन गई। ये लोग हर्षपूर्वक उसे प्रणाम करते हैं। इस प्रकार की नीचता दर्शाना ही अस्वतन्त्र जाति के लिए सामाजिक पतन का चिन्ह है और शासकों की सामाजिक बिजय का पताका है। हम लोगों में से कुछ लोग अंङ्गरेज पुरुष और स्त्रियों को प्राचीन पुरोहितों की भांति समझते हैं। इस शोकजनक दृश्य को देखिये और इसके भयोत्पादक परिणामों पर ध्यान दीजिए। यह हिन्दू जातिकी मृत्युका समय है!

गुरू और शिक्षक बन कर शासक जाति के प्रतिनिधियों ने हमारे ज़नाने में भी प्रवेश कर लिया है। मेम अध्यापिका के चरणों के पास हिन्दू बालिकाओं के पाठ पढ़ने का शब्द सामाजिक विजय की घोषणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस दृश्य को देखकर प्रत्येक मनुष्य के ध्यान में यह अवश्य आ जाता होगा कि इतिहास हमारी जाति के मृतक शरीरों को श्मशान भूमि में लिये जा रहा है जहां जाकर हमारा फिर कोई स्मरण न करेगा और ये कन्यायें शोकग्रस्त होकर धीरे २ 'राम राम सत्य है, का शब्द उच्चारण कर रही हैं।

हिन्दुओं में इस बात को तत्वतः समझने वालों की मृत्यु है। जो लोग स्वयं कुछ नहीं समझ सकते उनको चाहिये कि अपने धर्म विपक्षियों के वाक्यों ही से कुछ लाभ उठावें। ईसाई मत प्रचारक मि० जे० एन० फरकूहार जिन्हें वास्तव में हिन्दू मत का विपक्षी समझना चाहिये अपने समय के पत्र में लिखते हैं :--

'इस सङ्गठन (अर्थात् हिन्दू मत) का नेता और सञ्चालक ब्राह्मण नहीं है और न कोई हिन्दू है किन्तु एक विदेशी स्त्री है। यह कैसी अनहोनी बात है कि वर्णाश्रम धर्म का नेता कोई विदेशी स्त्री हो'। यह केवल आश्चर्यजनक बात नहीं किन्तु इसका अर्थ कुछ और ही है इस बातकी सत्यता में सन्देह नहीं कि शत्रु अब दुर्ग के भीतर पहुंच गया।

मिसेज़ बिसेण्ट तथा अन्य युरोपियनों का हिन्दुओं के धार्मिक जीवन को अपने वश में कर लेना और उसे अपनी इच्छानुसार चलाने का उद्योग करना सामाजिक बिजय का अन्तिम चिन्ह समझना चाहिए।

बहुत सम्भव है कि "हिन्दू धर्मके ये मित्र" अपने को सच्चे परोपकारी समझ कर अपने कार्य को करते हों। किन्तु यह बात हम लोगों को बिचारना चाहिए कि इसका परिणाम क्या हो रहा है। उन्हों ने जो थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त की है वह इस बात को सूचित करतीहै कि हिन्दू जाति पर युरोपियनोंने सामाजिक बिजय

प्राप्त कर ली है। इसके अतिरिक्त और उनके परिश्रम का क्या परिणाम हो सकता है? अंगरेज़ राजकर्मचारी ब्राह्मणों, वैद्यों और अध्यापकों इत्यादि को अपने उच्च स्थानों से हटाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं और अन्य अंगरेज़ जो सरकारी सेवक नहीं हैं धर्मनेता, गुरू और ऋषि बन बन कर उन स्थानों पर डटते जा रहे हैं। जिस दिन ब्रिटिश अध्यापक, वैद्य और पुरोहित बन कर सारे देश में फैल जायंगे और भारतवासी इन पदों से एकदम लुप्त हो जायंगे उस दिन समझ लेना कि सामाजिक विजय पूर्णरूप से प्राप्त हो गयी और तब सेना के ऊपर अधिक व्यय करने की आवश्यता न रहेगी जिसके लिए कांगरेस वाले लड़ झगड़ रहे हैं।

(२)

अंगरेज़ों द्वारा स्थापित स्कूलों तथा कालेजों के प्रभाव से हम लोगों में आत्माभिमान और जाति-गौरव का ध्यान धीरे २ दूर हो गया है। इसका आश्रय लेकर ब्रिटिश लोगों ने सामाजिक विजय के दूसरे उपाय का भी अवलम्बन करना आरम्भ कर दिया है।

भारतवासियों को राजकार्य में सम्मिलित करने की नीति ने हमारे सामाजिक नेताओं के बालकों को अङ्गरेजों के नेतृत्व में बद्ध कर दिया है। क्योंकि वे भारतवासियों से उच्च स्थान पर काम करते हैं। इस प्रकार कोई नियम नहीं है कि जिसके कारण भारत वासियों को संसार में अपने को, अथवा अपनी जाति को, नीच समझ कर सरकारी कर्मचारी बनना आवश्यक है। तथापि यह एक साधारण बुद्धि की बात है कि ओहदे में न्यून होने के कारण

कोई अफ़सर एक जागीरदार के पुत्र का इतना आदर सत्कार न करेगा जितना कि स्वतन्त्रता के कारण उसके पिता का ।

अब लेजिस्लेटिव कौंसिलों की ओर ध्यान दीजिये। उसका सभापति अंगरेज़ होताहै और महाराष्ट्र ब्राह्मण तथा सिक्ख राजा, जो कि हिन्दू समाज के सिरमौर समझे जाते हैं, उस सभापति के नेतृत्व के झण्डे का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार से वाइसराय महोदय को आप हिन्दू सामाजिक नेताओं का भी नेता समझिये।

क्या कभी हम लोगों ने यह बात सोची है कि सरकार हम लोगों को लेजिस्लेटिव कौंसिल में क्यों स्थान देती है जब कि अङ्गरेज़ लोग बड़े २ प्रतिष्ठित हिन्दुओं तक को अपने क्लबों में लेने पर उद्यत नहीं होते ? १८६१ में सरकार ने लेजिस्लेटिव कौंसिलें स्थापित की थीं। अब ये कौंसिलें समाजके रूपमें हैं। इसी प्रकार क्लबों को भी समाज समझना चाहिए। यद्यपि यह अन्तर अवश्य है कि कौंसिलों में बैठकर कोई हंसी ठट्ठा अथवा खाना पीना नहीं कर सकता तथापि वास्तव में कोई बड़ा भारी अन्तर नहीं है। ऐसा क्यों होता है कि वाइसराय महोदय हिन्दू नेताओं को कौंसिल के लिए स्वयम् नामज़द करते हैं जब कि विद्वान् से २ हिन्दू किसी प्रकार से अङ्गरेजी क्लबों में घुस नहीं सकते ? भारत के शासकगण इस बात को भली भांति समझते हैं कि हिन्दुओं के साथ मित्र भाव रखने से उनका राज्य चिरस्थाई हो जायगा। परन्तु यदि यही उनका उद्देश्य है तो इस प्रकार की मित्रता क्लबों में और भी

अधिक हो सकती है। फिर भी वे लोग हम लोगों को वहां से अलग रखना क्यों अच्छा समझते हैं ?

इसमें एक छिपी हुई बात है। वह यह है कि क्लबों में सामाजिक प्रेम का व्यवहार समानता के आधार पर होता है। किन्तु अंगरेज़ लोग हिन्दुओं के साथ मित्रता का व्यवहार असमानता के आधार पर चाहते हैं। हिन्दुओं द्वारा वे अधिक परिचय-दर्शक शब्द से पुकारा जाना अच्छा नहीं समझते। जिस प्रकार से वे परस्पर पुकारते हैं यदि उसी प्रकार से कोई बड़ा से बड़ा हिन्दुस्तानी उन्हें पुकारे तो वे अवश्य तुरन्त ही रुष्ट हो जायंगे। भारतवर्ष में लेजिस्लेटिव कौंसिल, म्यूनिसिपल बोर्ड, दरबार और कालेज इत्यादि को उनका प्लेटफार्म समझिये। उन स्थानों पर प्राचीन ब्राह्मणों की भांति अंगरेज़ लोग अपनी सामाजिक महत्ता बड़े२ धनी और विद्वान् लोगों के मध्य में दर्शा सकते हैं। एक युरोपियन सिविलियन की अध्यक्षता में-जिसका पिता सम्भवतः इंगलैण्ड का बवर्ची, गड़रिया, बूचड़, मोची अथवा साधारण दूकानदार होगा भारत के उच्च घरानेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय एकत्रित होते हैं। यह कैसा शोकजनक दृश्य है, जब हमारे बालक इस बात को देखते हैं तब वे समझते होंगे कि गौरांग लोग ऋषियों से भी बड़े होंगे। क्योंकि वे ब्राह्मणों से भी उच्च आसन पर बैठाले जाते हैं। जिस प्रकार 'शेली' साहब कवियों के कवि कहे जाते हैं उसी भांति वे ब्राह्मणों के ब्राह्मण हैं। हमारे बालकों में आत्मगौरव का गुण किस प्रकार हो सकता है जब कि उनके वृद्ध जन बिना किसी

प्रयोजन के एक साधारण अंगरेज़ के सामने हीनता दिखाने में अपना सौभाग्य समझते हैं।

चीफ्स कालेज (Chifes' College) में शिक्षा पाने वाले राजपुत्र अपने मुख्य अध्यापक को अवश्य प्रणाम करेंगे। इस बात को यदि ध्यान पूर्वक देखिये तो मालूम होगा कि कितना बड़ा परिवर्तन हो गया। प्राचीन राज घराने की सन्तानें एक साधारण आक्सफोर्ड अथवा केम्ब्रिज के ग्रेजुएट की सामाजिक महत्ता को स्वीकार करते हैं।

कभी २ हम लोग स्वयम् ब्रिटिश लोगों को ब्राह्मणों का स्थान प्राप्त करने का अवकाश देते हैं। हम लोगों में कुछ लोग सभा इत्यादि में युरोपियन कर्मचारियों को सभापति बनाते हैं। यही नहीं, किन्तु बुद्धि और देशप्रेम दर्शाने वाली भारतवर्ष की राष्ट्रीय महासभा भी आत्म गौरव का ध्यान न करके सभापति के आसन पर कभी २ युरोपियन स्त्रियों को बिठाती है।

ब्रिटिश हिन्दुस्तान को धन्य है कि जिस में शासक जाति का एक व्यक्ति हिन्दू देशभक्तों की सभा का नेता बने। क्या यह विचार हमारे हृदयों में आ सकता है कि सन् १२०० में शहाबुद्दीन मुहम्मदग़ोरी के सभापतित्व में हिन्दू देशभक्तों की सभा एकत्रित हो सकती थी, अथवा सन् १६६० में शाइस्ताखां के नेतृत्व में जातीय कांग्रेस का होना सम्भव था? १९०४ की कांग्रेस में, जिसमें सर हेनरी काटन सभापति थे, बाबू विपिनचन्द्र

पाल ने जो वाक्तृता दी थी उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में स्कूल और कालेजों की शिक्षा की बदौलत अब जाति-गौरव और आत्माभिमान का बिलकुल नाश हो गया। निम्नलिखित वाक्य इसके उदाहरण हैं।

"बहिनों और भाइयों, मुझे इस स्थान में लज्जा नहीं मालूम होती यद्यपि अन्य अवसरों पर अफ़सरों के सम्मुख झुकने में मुझे बड़ा दुःख होता है। सच्चा और हार्दिक देश भक्त होने पर भी इस अवसर पर उस व्यक्ति के सम्मुख, जिसे हमलोगों ने कांग्रेस का नेता और स्वामी बनाया है, नम्रता दिखाने में मुझे लज्जा नहीं मालूम होती।"

यह दृश्य एक विदेशी विद्वान् फ्रेंच अथवा जर्मन को कैसा बेतुका और हास्यजनक जान पड़ेगा। यदि इसके घोर परिणामों को हम लोग अपने प्रति समझें तो हमें भी हंसी मालूम होगी। इससे केवल यही नहीं ज्ञात होता कि हम लोग देश भक्त नहीं हैं किन्तु यह भी मालूम होता है कि हम लोग देशभक्ति और आत्मगौरव का अर्थ ही नहीं समझते। यह उससे भी बड़ी भूल है और इसी प्रकार से भारतवर्ष के शिक्षित गण सारे संसार में हंसे जाते हैं। जब तक कि जाति-अभिमान और देश-भक्ति का पूर्णरूप में नाश न हो जायगा तब तक सर्वभक्षी अग्नि देवता की भांति सामाजिक विजय धीरे २ बढ़ती जायगी। इसी सामाजिक विजय की आवश्यकता के कारण हमारे स्कूलों में शिक्षक बन कर, औषधालयों में डाक्टर बन

कर, कचेहरी में मैजिसट्रेट बनकर, दफ्तरों में बड़े २ अफसर बन कर, म्यूनीसिपेल्टी अथवा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, लेजिस्लेटिव कौंसिल और दरबार इत्यादि के सभापति बन कर अंग्रेज़ लोग अपना कार्य सिद्ध कर रहे हैं। यही कारण है कि वे हिन्दुओं को मित्र के समान अपने कलबों में स्थान नहीं देते। किन्तु उनके साथ सामाजिक वादाविवाद करने में वे रक्षक, नेता, सहायक और स्वामी की भांति काम करना चाहते हैं। सामाजिक विजय के कार्य को पूर्ण करने के लिए असमानता सूचक वार्तालाप करने को उन्हें प्लेटफार्म चाहिए। उस प्लेटफार्म को भी उन्हों ने उत्पन्न कर लिया है और अपने उद्देश्यकी सिद्ध के लिये वे पूर्णरूप से प्रयत्नकर रहे हैं।

(३)

किसी भी जाति में आप ऐसे मनुष्य न पावेंगे जो अपने सामाजिक पतन के लिए यत्न करें। शांति से रहना और कर इत्यादि देना एक साधारण बात है। किन्तु आदर पाने की लालसा से म्यूनिसिपेल्टी और लेजिस्लेटिव कौंसिलों का मेम्बर बनना बिलकुल दूसरी बात है। ऐसे मनुष्यों के वर्तमान रहते हुए जिनको कि कलक्टर, कमिश्नर, जज अथवा कौंसिल के मेम्बर बनने की आशा है, यही कहा जा सकता है कि सामाजिक विजय कितना प्राप्त हो चुका है और ब्रिटन लोग ब्राह्मण की स्थिति के कितने निकट आ पहुंचे हैं। एक कट्टर हिन्दू जो कि हिन्दुओं के सिवा औरों का छुआ हुआ एक गिलास पानी भी पीने को उद्यत नहीं होता है किस प्रकार से मांस भक्षक विदेशी द्वारा

शाशित सभा में नीचे आसन ग्रहण करने को अपना मान समझता है, यह समझ में नहीं आता। यह बात फिर कहनी पड़ती है कि ऐसा कोई नियम नहीं है जिसके कारण इस प्रकार की नीचता दिखाना आवश्यक है। चाहे हम "गरम' दल में हों या "नरम" में, किन्तु यह हमारी शक्ति में है कि हम अस्वतन्त्र जाति के सामाजिक पतन में सहायता न दें। यदि हम अपनी शाशनशक्ति के शनैः २ नाश होने के विषय में कुछ कहना चाहें तो लोग हमें राजविरोधी समझने लगेंगे, किन्तु सामाजिक विजय की वृद्धि का प्रतिरोध हम अवश्य कर सकते हैं और इससे हमारे जीवन तथा धन पर किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

भारतवर्ष में शिक्षित समुदाय जातित्व का शत्रु और आत्मबल से रहित है। बहुत से शिक्षित लोग स्वार्थ के लिए जाति की जड़ को उखाड़ने में बड़े २ घृणित कार्य कर रहे हैं। वकील, बारिस्टर, सिविलियन और लेजिस्लेटिव कौंसिलों के सभासद् बनकर शिक्षित लोग धीरे २ हिन्दू जाति को मनुष्यत्व से नीची श्रेणी पर पहुंचा रहे हैं। देशाभिमान, आत्मगौरव और जाति की भिन्नता का ध्यान वे लोग विस्मरण कर रहे हैं और यह नहीं समझते कि इन गुणों पर जाति का जीवन निर्भर है।

सतशः उच्च घरानेवाले ब्राह्मण और धनी हिन्दू एकत्रित होकर एक साधारण अङ्गरेज़ की महता सूचित करने के लिए, जोकि सम्भवतः भारतवर्ष में आने के पूर्व बिलायत में चमार, लोहार, और बनियों

नेता था, दावत देते हैं। इन उदाहरणों से ज्ञात होता कि हम लोग बड़ी शीघ्रता के साथ निग्रो जाति की समता करना चाहते हैं। ऐसी दावतों में सम्मिलित होकर हमलोग अपने को बिलायत के कुली और मोची से भी सामाजिक स्थित में नीच सिद्धि करते हैं। सामाजिक बिजय की नीति को इस प्रकार सफल होते देखकर भारतवर्ष के अंगरेज़ अफसरों को अवश्य हर्ष होता होगा।

सामाजिक बिजय के पश्चात निरन्तर दासत्व के अन्धकार में पड़ जाना होता है। जो कोई इस बिजय की प्राप्ति में सहायता देते हैं वे अपने को पारिया जाति में परिवर्तित कर रहे हैं। जाति का राजनैतिक नेतृत्व क्षत्रियों के हाथों से निकल कर ब्रिटिश लोगों के हाथों में पहुंच गया है। क्या वे सामाजिक आधिपत्य को भी जो कि अभी तक ब्राह्मणों के हाथों में था, अपने वश में कर लेंगे? जब सामाजिक बिजय पूर्ण रूप में प्राप्त हो जायगी तब हमारी जाति की कोई आशा न रहेगी। आरम्भ ही से इसके कुपरिणाम स्पष्ट हैं इसकी औषध शीघ्रही ढूढ़ना चाहिये। क्योंकि इसका प्रतिरोध करने से राजनैतिक उन्नति का मार्ग मिल जायगा। इस स्थान पर मैं उन उपायों को नहीं समझाऊंगा जिनसे कि सामाजिक बिजय का प्रतिरोध हो सकता है किन्तु भारतवासियों से यह प्रश्न पूछ कर कि क्या भविष्य में आपके ब्राह्मण 'ब्रिटन' होंगे? इस लेख को समाप्त करता हूं।

—०—

पाश्चात्य देशों की शिक्षा पर एक सम्मति।

भारतीय बालक और बालिकाओं की उच्च शिक्षा का प्रश्न देश के लोगों का मन अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। केवल ऊपरी शिक्षा से सन्तोष मिल जानेवाला समय अब अन्तर्धान सा होता जा रहा है। इस प्रश्न की ओर विशेष ध्यान ज़मीदारों और वणिक लोगों ही का है, क्योंकि वे इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि केवल उनकी अयोग्यता और जंगलीपन के कारण पढ़े लिखे लोग समाज के नेता बनते जाते हैं। जाति के इन प्रभावशाली फ़िर्क़ों के बहुत से धनवान पुरुष अपने लड़कों को युरप भेजने के लिए तैयार हैं जिससे भारतवर्ष की नवीन स्थिति में वे अपने योग्य स्थान को प्राप्त कर सकें, ये ज़मीदार और वणिक विद्या को धन कमाने का साधन बनाने की इच्छा नहीं रखते, क्योंकि उनके धन कमाने के और और ज़रिये मौजूद हैं। न तो वे अधिकारियों की कृपा के आधीन ही हैं और न उन्हें उन बाधाओं और मुसीबतों ही का सामना करना पड़ता है जो और लोगों को रोटी कमाने में उठानी पड़ती हैं। मध्यम श्रेणी के गरीब और अमीर विद्यार्थी इंगलैंड में इसलिए आते हैं। कि या तो वे सिविल सर्विस, शिक्षा विभाग, डाक्टरी और इञ्जीनियरी की परीक्षा पास करें या अन्य किसी पेशे को सीखें। उनका मुख्य उद्देश्य रोटी कमाना होता है, न कि शिक्षा ग्रहण करना। यदि उन्हें कोई शिक्षा मिल जाती है तो वह घाते में है। परन्तु

भाग्यवश जिन लोगों को रोटी कमाने के लिए कोई संग्राम नहीं करना पड़ता, उन्हें चाहिये कि वे वास्तविक शिक्षा प्राप्त करें। उन्हें अपनी ज़मींदारी या अपने कारखानों की उन्नति करने के लिए वैज्ञानिक खेती अथवा कोई विशेष कला-कौशल सीखना चाहिये। वे साधारण शिक्षा-प्रणाली के बन्धन से मुक्त हैं। उन्हें अपनी भविष्य बनाने के लिए जहां कहीं शिक्षा के उत्तम साधन प्राप्त हों वहीं वे जा सकते हैं।

बैरिस्टरी का एक बड़ा भारी फाटक इन लोगों के लिए बन्द हो गया। अब केवल ग्रेजुएट लोग ही बैरिस्टरी पढ़ने जा सकेंगे। मेरी राय में इससे हमारे देश को बहुत लाभ होगा। जिन लोगों ने यह रुकावट पैदा की है, उनका उद्देश्य चाहे जो कुछ हो, परन्तु भारत का तो इससे बड़ाही उपकार होगा। अब धनवान ज़मींदारों और सौदागरों के लड़के अपना धन, स्वास्थ्य और चरित्र नष्ट करेने के लिये टेम्स नदी के किनारे न जायेंगे। इस समय उन्हें वाणिज्य और खेती की ओर ध्यान देना चाहिये। इससे लाभ भी अधिक होगा। यदि ज़मींदारों के लड़के खेती नहीं करना चाहते तो वे अपने धनसे कोई रोज़गार कर सकते हैं। बैंक, बीमा, कला-कौशल इत्यादि धन्धे अमीर भारतवासियों का मुंह देख रहे हैं। अबतक ज़मींदारों और सौदागरों के लड़के बैरिस्टरी ही में मरे जाते थे। वे सामाजिक प्रतिष्ठा के भूखे थे और बिना पुरुषार्थ किये द्रव्य कमाना चाहते थे। अब उनके लिये बैरिस्टरी का दर्वाज़ा

बन्द होगया है, इसलिए उन्हें रोज़गार करना चाहिये और यही उनका ठीक काम भी है।

रोज़गार अंग्रेज़ों या अंग्रेज़ी विश्वविद्यालयों की बपौती नहीं है खेती और शिल्प के सर्वोत्तम विद्यालय जर्मनी और फ्रान्स में हैं। क्योंकि फ्रान्स एक खेतिहर देश है और जर्मनी विज्ञान की मातृभूमि है। शिक्षा सम्बन्धी उन्नति में इंगलैंड इन देशों से बहुत पीछे है। यह बात मैं स्वयम अपने अनुभव से कहता हूं कि अङ्गरेज़ी विश्वविद्यालय नैतिक और मानसिक शिथिलता के अड्डे हैं। जब तक कोई मनुष्य केवल आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज और एडिनबरा ही को जानता है, तब तक वह उनकी तारीफ़ करता है, परन्तु जब वह संसार के अन्य विश्वविद्यालयों को भी देखलेता है तब तो वह उनसे घृणा करने लगता है। मुझे आशा है कि आक्सफोर्ड मुझे छमा करेगा क्योंकि वह हमें सिखाता है कि हम उससे प्रेम करें, परन्तु साथ ही वह हमें सिखाता है (अथवा उसे सिखाना चाहिये) कि हम सत्य से अधिक प्रेम करें, अङ्गरेज़ी विश्वविद्यालय "दकियानूसी" हैं। अनिवार्य यीकभाषा, धार्मिक शिक्षा कीसनद, गिरजाघर. टारीपन (उन्नति का विरोध), मिल का सम्पत्ति-शास्त्र, होगा, लेटिन भाषा में व्याख्यान, स्वेच्छा चारी पादरी तथा अनेक "दकियानूसी" बातें वहां इस बीसवीं सताब्दी में भी विराजमान हैं। इससे मानसिक उन्नति का होना तो दूर रहा, उलटी मानसिक शिथिलता अथवा मानसिक मृत्यु ही

उत्पन्न होती है। इस अँश में इङ्गलैण्ड सारी जातियों से पीछे हैं। जाड़े के कुहरे के अनुसार वह अपने ही ख्याल में मस्त है। परन्तु धीरे धीरे वह गिरा जाता, है यदि उसे जीवित रहना है तो उसमें फिर जागृत होनी चाहिये।

वर्तमान सभ्य सँसार में फ्रान्स और जर्मनी दो बड़े उन्नत देश हैं। यद्यपि अमेरिका इङ्गलैंड से आगे है, तौ भी वह फ्रांस और जर्मनी के पीछे पीछे चलता है। विज्ञान, कला, साहित्य सामाजिक उन्नति और नैतिक जीवन में फ्रांस और जर्मनी के सम्मुख इङ्गलैंड की वही दशा है, जो इङ्गलैंड के आगे इटली की। फ्रांस और जर्मनी में जान है—वह जान उमङ्गें मार रही है। उत्तम और औद्योगिक शिक्षा के लिए हमें फ्रांस और जर्मनी की तरफ़ ध्यान देना चाहिये। इङ्गलैंड अपने फिलङ्गी पन के कारण पूर्वीय देशों की तरह है।

जिन लोगों ने केवल इङ्गलैंड देखा है वे उसे बहुत कुछ उन्नत समझते हैं परन्तु जिन लोगों ने और स्थानों की भी हवा खाई है उनके विचार कुछ और ही हैं। शिक्षा के लिए पेरिस विश्वविद्यालय सारे संसार का केन्द्र है। वहां रूस, पोलैंड, पेरिस और चीन से विद्यार्थी पहुंचते हैं। जापानी लोग अधिकतर जर्मनी जाते हैं। बहुत कम ऐसे हैं जो इङ्गलैंड जाते हैं। मिश्री लोग फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड जातें हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि जो पूर्वीय जातियां इङ्गलेन्ड के राजनैतिक बन्धन में नहीं हैं वे उसकी विद्या-

पीठों की जो कुछ पर्वाह नहीं करती। इस मामले में जापानियों का फैसला ठीक समझना चाहिये, क्योंकि जापान जिस बात को ठीक देखता है वही करता है।

इङ्गलैंड और अमेरिका में एक बड़ा भारी दोष यह है कि इन देशों के पढ़ने के निमित्त रोज़मर्रः के खर्च के लिए बहुत धन की आवश्यता है। अमेरिका में चीज़ों के दाम बहुत हैं। किसी विद्यार्थी का हार्वर्ड और येल में बिना तीन सौ रुपये मासिक के विद्याध्ययन करना असम्भव है। मैं त्यागी लोगों का ज़िक्र नहीं करता। यह बात है भारतवर्ष की उच्च कक्षा के साधारण युवकों की। वे मज़दूर तथा मज़ारियों की तरह नहीं रह सकते और उन्हें ऐसा करना भी न चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से उनके स्वास्थ्य को हानि पहुंचेगी और पाश्चात्य देशों में रहने से जो लाभ होता है वह उन्हें पूरा पूरा न प्राप्त होगा। इसलिये मध्यम श्रेणी सबसे अच्छी है। जैसे और विद्यार्थी रहते हैं वैसे ही उन्हें भी रहना चाहिये। उन्हें अपने मैलेपन, लापरवाही तथा त्याग से कोई विशेषता न प्राप्त करनी चाहिये। प्राकृतिक और स्वास्थ्यकारक रीति से अमेरिका में रहकर किसी बड़े विश्वविद्यालय में नियमानुसार शिक्षा पाने के लिए एक साधारण विद्यार्थी को कम से कम ३०० रु० मासिक की आवश्यकता पड़ती है। इङ्गलैंड में ढाई सौ रूपये में गुज़र हो सकती है। इससे कम में काम ठीक २ नहीं चलता।

परन्तु इङ्गलैंड और अमेरिका की अपेक्षा फ्रांस और स्विटज़रलैंड में कम ख़र्च में जीवन निर्वाह हो सकता है। बहुत से अंग्रेज़ परिवार ख़र्च बचाने के लिए स्विटज़रलैंड चले जाते हैं, क्योंकि वहां थोड़े ही ख़र्च में जीवन के वेही सुख मिल सकते हैं जो इङ्गलैंड में अधिक धन ख़र्च करने से मिलते हैं। स्विटज़रलैंड और इटली के उत्तरीय भाग में इस प्रकार इस प्रकार के सैकड़ों मध्यम श्रेणी के लोग पाये जाते हैं। इसलिए जिन लोगों को अपने परिमित धन से विशेष लाभ उठाना है, उनके लिए यूरोप के मध्य भाग में शिक्षा प्राप्त करना बहुत ठीक है। फ्रांस और स्विटज़रलैंड के सारे विश्वविद्यालयों में फीस भी बहुत कम है। इङ्गलैंड की शिक्षा सम्बन्धी सँस्थाएँ केवल इसीलिए हैं कि शिक्षा और शक्ति वहां के मालदार लोगोंही के अधिकार में रहे। परन्तु फ्रांस और स्विटज़रलैंड में वे सर्वसाधारण के फायदे के लिए हैं, इसलिए इँगलैंड की अपेक्षा वहां शिक्षा प्राप्त करने में कम ख़र्च पड़ता है। जर्मनी में भी ख़र्च कम पड़ता है। परन्तु जर्मनी और इँगलैंड में में कुछ विशेष अन्तर नहीं है। स्विटज़रलैंड यूरोप के उन देशों में से है जिनमें जीवन के सारे काम थोड़े ख़र्च से चल सकते हैं। वह संसार का उद्यान भी है।

जल-वायु के ख़याल से भी भारतवर्ष के माता-पिताओं को अपने लड़के को इङ्गलैंड और अमेरिका की पूर्वीय रियासतों में न भेजना चाहिये। इन देशों में बहुत सर्दी और हवा होती है। इङ्गलैंड उन देशों में एक है जहां की जल-वायु बहुत ख़राब है।

कोई अङ्गरेज इससे इन्कार नहीं कर सकता। अमेरिका की पूर्वीय रियासतों में या तो इतनी ठण्ढक होती है कि लोग जाड़े के दिनों में खांसी और बुखार से मर जाते हैं, या इतनी गर्मी होती है कि लोग गर्मी के दिनों में धूप से मौत के शिकार होजाते हैं। बोस्टन या वाशिङ्गटन में गर्मी लगभग १५ डिगरी से लेकर १०४ डिगरी तक होती है। कोई भारतवासी ऐसे सख्त जाड़े का अनुमान नहीं कर सकता। वह नहीं जान सकता कि १० डिगरी गर्मी में कितना जाड़ा होता है। यह तो मलाई की बर्फ से भी ठण्ढा होता है। जाड़े के दिनों में अमेरिका में उत्तरी ध्रुव का सा जाड़ा होता है और गर्मी में सौडान की सी गर्मी। अमीरों के नाजुकबदन लड़कों के लिए बहुत काल तक इङ्गलैंड या पूर्वीय अमेरिका में रहना ठीक नहीं है। मैं बहुत से जवान आदमियों को जानता हूं जो या तो इन सर्द देशों में रहने के कारण क्षय रोग से काल की भेंट होगये हैं या वहां लौटते समय क्षय रोग के बीज लेते गये हैं। बहुत से बैरिस्टर अपने घर लौटकर इस असाध्य रोग का शिकार होजाते हैं। दुर्बल स्वास्थ्य पर जल-वायु का प्रभाव बहुत शक्त है और अनुचित खान पान ही इस दुखदाई अवस्था का मूल कारण है।